इकाई – 12

विशाखदत्त का परिचय–काल मुद्राराक्षसः कथा, कथा का स्रोत

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

एम.ए. पूर्वार्द्ध संस्कृत के द्वितीय प्रश्नपत्र ललित साहित्य एवं नाटक की इकाई ग्यारह के अन्तर्गत संस्कृत के प्रख्यात नाटककार विशाखदत्त के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का एवं विश्वविख्यात नाटक मुद्राराक्षस की कथा एवं उसके मूलस्रोत का वर्णन किया गया है। इसके अध्ययन के उपरान्त आप

1) नाटककार विशाखदत्त के बहुमुखी व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित होंगे।
2) विशाखदत्त के काल–विषयक विभिन्न मत–मतान्तरों के विश्लेषण के उपरान्त उनके काल का निर्धारण कर सकेंगे।
3) संस्कृत साहित्य के यथार्थवादी एवं राजनीतिक पृष्ठभ्मि के अद्वितीय नाटक मुद्राराक्षस की सम्पूर्ण कथा को जानेंगे।
4) कूटनीतिक षड्यन्त्रों से परिपूर्ण, इस कथा के उद्गम स्रोत को भो जान सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

संस्कृत साहित्य में विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नामक नाटक का अद्वितीय स्थान है। इसमें नाट्य शास्त्रीय समस्त नियमों का परिपालन करते हुए भो अभिनेयता का पूर्ण ध्यान रखा गया है। विशाखदत्त ने इस नाटक में श्रृंगार के रोमानी पथ का त्याग कर राजनीति की कठोर उतार–चढ़ाव वाली पद्धति को अपनाया है। भाव पक्ष के स्थान पर विचार पक्ष को प्रमुखता दी है। कृत्रिम शैली के आडम्बर के स्थान पर यहां सर्वत्र वैदर्भी रीति, प्रसाद एवं ओज गुण व्याप्त है मुद्राराक्षस में प्रारम्भ से अन्त तक गत्यात्मकता बनी रहती है, दर्शकों म भावी घटनाओं के प्रति उत्सुकता बनी ही रहती है। दर्शक अन्त तक चाणक्य के बौद्धिक खेल में उलझा रहता है। नाटक के अन्त में ही समस्त गुत्थियाँ सुलझती हैं और दर्शक मंत्र मुग्ध रह जाता है। यह जानकर कि बिना रक्तपात या क्रान्ति के चाणक्य ने केवल अपनी बुद्धि कौशल से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है यही इस नाटक की अद्वितीयता है।

12.2 विशाखदत्त : सामान्य परिचय

यो मुद्रया राक्षसकीर्तिहारी स्वज्ञानमुद्रार्जितराक्षसश्रीः।
विज्ञानभानुर्नयवर्त्मदक्षो विशाखदत्तः प्रथते पृथिव्याम्।। (कपिलदेव द्विवेदी)

संस्कृत साहित्य में नाटककार विशाखदत्त की कीर्ति को अक्षुण्ण बनाने वाला नाटक है 'मुद्राराक्षस'।

मुद्राराक्षस की प्रस्तावना से नाटककार के विषय में कुछ ज्ञात होता है अथ सामन्तवटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजपदभाक् पृथुसूनोः कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिः मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यं ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है विशाखदत्त के पिता महाराज पृथु एवं पितामह सामन्तवटेश्वरदत्त थे।

कुछ संस्करणों में पिता का नाम भास्करदत्त भो प्राप्त होता है। प्रस्तावना में 'सामन्त' शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि इनके पिता या पितामह किसी चक्रवर्ती सम्राट के सामन्त पद पर आसीन थे। इसीलिए विशाखदत्त के राजनीतिक वातावरण का परिपाक 'मुद्राराक्षसम्' में देखा जा सकता है।

विशाखदत्त का शास्त्रीय ज्ञान

मुद्राराक्षस की कथावस्तु राजनीति प्रधान होने के कारण विशाखदत्त को अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, नाटकीय व्यापारों का सूक्ष्म ज्ञान होना आवश्यक था। नाटककार के गम्भोर उत्तरदायित्व का निर्वहन कितना दुरुह है उन्होंने नाटक के चतुर्थ अंक में राक्षस के मुख से कहलाया है।

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छ –
न्बीजानां गर्भितानां फलमतिगहनं गूढमुदभेदयंश्च।। मु. रा. 4/3

भरत द्वारा निर्दिष्ट नाट्यशास्त्रीय नियमों का परिफलन मुद्राराक्षस में सम्यक् रूप से किया गया है इससे विशाखदत्त का नाट्यशास्त्रीय ज्ञान परिलक्षित होता है।

अर्थशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों यथा कृत्य, सिद्धि, षाड्गुण्य, उपाय, द्रव्य, अद्रव्य, परिगणन, अनुग्रह, विग्रह तीन प्रकार की सिद्धियों का उल्लेख प्राप्त होता है। (राजायत्तां, सचिवायत्ताम्, उभयायत्ताञ्चेति) इन सबसे विशाखदत्त के राजनीति एवं राजनीति शास्त्र में पारङ्गत होना ज्ञात होता है।

विशाखदत्त ज्योतिषशास्त्र एवं गणितशास्त्र के भो पारंगत थे। इसका ज्ञान हमें ''कृतश्रमोस्मि चतुःषष्ट्यिङ्गे ज्योतिः शास्त्रे'' तथा ''रक्षत्येनं बुधत्येनं बुधयोगः'' इत्यादि वक्तव्यों से होता है।

'दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति' द्वारा यह पता चलता है कि वे पुरुषार्थवादी थे।

बौद्ध दर्शन (5/2, 4/18) न्यायदर्शन (5/10) से उनके भारतीय दर्शन के गूढ़ ज्ञान के परिचय प्राप्त होता है।

इस प्रकार विशाखदत्त न केवल एक श्रेष्ठ नाटककार थे अपितु भारतीय दर्शन, गणित, ज्योतिष, राजनीति के भो प्रकाण्ड पण्डित थे। राजवंश से सम्बद्ध होने के कारण विशाखदत्त को राजनीति का प्रत्यक्ष एवं व्यवहारिक ज्ञान तो था ही साथ ही उन्होंने अर्थशास्त्र का भो गहन अध्ययन किया था। शत्रुपक्ष में फूट डालना, विषप्रयोग, शत्रुनाश के विविध उपाय, कूटलेख आदि की परिकल्पनाएँ अर्थशास्त्र तथा व्यवहारिक राजनीति का परिचय के कारण ही विशाखदत्त नाटक में प्रस्तुत कर सके।

विशाखदत्त का कृतित्व

'मुद्राराक्षस' के अतिरिक्त विशाखदत्त की दो अन्य कृतियों का भो उल्लेख प्राप्त होता है।

(1) देवीचन्द्रगुप्त

इसका कथानक भो राजनीतिक है। इसमें गुप्तवंशीय रामगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा ध्रुव देवी की कथा है। कायर एवं अयोग्य राजा रामगुप्त प्रबल शकराज के मांगने पर अपनी पत्नी ध्रुव देवी उसे देना स्वीकार कर लेता है। चन्द्रगुप्त अपने छल से ध्रुव देवी के वेष में जाता है एवं शकराज को मार डालता है एवं ध्रुवदेवी से विवाह भो कर लेता है यह नाटक अभो तक पूर्ण रूपेण प्राप्य नहीं है।

(2) अभिसारिकावञ्चितम्

इसका उल्लेख 'अभिनव – भारती' के 22वें अध्याय में तथा शृंगार प्रकाश के 12वें प्रकाश में उपलब्ध होता है। यह नाटक वत्सराज उदयन के जीवन से सम्बद्ध है। किन्तु यह भो अभो तक प्राप्त नहीं है।

इनके अतिरिक्त प्रो. ध्रुव ने 'सदुक्तिकर्णामृत' में उपलब्ध एक श्लोक के आधार पर 'राघवानन्द' नामक नाटक को भो विशाखदत्त प्रणीत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है किन्तु यह नाटक भो उपलब्ध नहीं है।

12.3 विशाखदत्त का काल

किसी भो कवि का समय दो आधारों पर जाना जा सकता है।

(1) अन्तः साक्ष्य ;अर्थात् कवि ने स्वयं अपने बारे में क्या लिखा है।

(2) बहिः साक्ष्य अर्थात् कवि के समकालीन अथवा परवर्ती विद्वानों ने उसके सम्बन्ध में क्या लिखा है।

विशाखदत्त ने स्वयं के जीवन, काल इत्यादि के विषय में नाटक की प्रस्तावना में एक पंक्ति के अतिरिक्त कुछ भो नहीं लिखा है।

म्लेच्छैरुद्विज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः।
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।। मु. रा. भरत वाक्य

अन्तः साक्ष्य में नाटक के भरत वाक्य में आए पार्थिवश्चन्द्र गुप्तः से विद्वान इनके स्थितिकाल के विषय में कुछ संकेत प्राप्त करते हैं। मुद्राराक्षस की कुछ पाण्डु लिपियों में पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः के स्थान पर 'पार्थिवोऽन्तिवर्मा', पार्थिवोदन्तिवर्मा, पार्थिवोरन्तिवर्मा पाठ भो प्राप्त होता है।

भारतीय इतिहास में रन्तिवर्मा नामक किसी राजा का उल्लेख प्राप्त नहीं है अतः यह पाठ अग्राह्य है।

पल्लव नरेश दन्तिवर्मा (720 ई.) के समय म्लेच्छों का आक्रमण दक्षिण में नहीं हुआ था। ये शैव राजा थे जबकि भरत वाक्य में राजा की विष्णु से तुलना है अतः यह भो अग्राह्य है।

'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' नामक पाठ के आधार पर कुछ विद्वान विशाखदत्त को मौखरिनरेश अवन्तिवर्मा (855–63) का समकालीन मानने के पक्ष में है।

इन्होंने हूणों को परास्त किया था अतः इनके साथ म्लेच्छैः का सम्बन्ध सही बैठ जाता है। इस आधार पर प्रो. तैलङ्ग इनका समय 7वीं या 8वीं शताब्दी मानते है।

'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' नामक पाठ ही अधिक प्रमाणित जान पड़ता है। भारतीय इतिहास में तीन चन्द्रगुप्त का उल्लेख प्राप्त होता है–

1. चन्द्रगुप्त मौय (मौर्य साम्राज्य की स्थापना करने वाले जो कि नाटक के स्वयं प्रमुख पात्र है।)
2. मगध के गुप्त साम्राज्य की स्थापना करने वाले चन्द्रगुप्त प्रथम
3. विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाले असीम शक्तिशाली चन्द्रगुप्त द्वितीय। (375 ई. से 413 ई. तक)

इनमें से प्रथम दो चन्द्र गुप्त तो विशाखदत्त के आश्रयदाता हो ही नहीं सकते क्योंकि प्रथम तो स्वयं नाटक के पात्र है और द्वितीय चन्द्रगुप्त के बारे में इतिहास में उनके द्वारा म्लेच्छों को पराजित करने का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही विशाखदत्त का आश्रयदाता मानना अधिक प्रमाणित है।

1. चन्द्रगुप्त द्वितीय ने शकों का उच्छेद किया था। (म्लेच्छैरूद्वेप्यमानः)
2. मुद्राराक्षस में आ शैलेन्द्रात् (3/19) में हिमालय से दक्षिण समुद्र तक साम्राज्य की कामना की है। यही बात चन्द्रगुप्त के मेहरौली लौहस्तम्भ से प्रमाणित होती है।
3. विशाखदत्त रचित 'देवीचन्द्रगुप्त' नाटक की कथावस्तु इस मत का समर्थन करती है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय से संबद्ध रहा है।
4. नाटक की राजनीतिक कल्पनाएँ भो चतुर्थ अथवा पंचम शताब्दी की परिस्थितियाँ की ही द्योतक है।

5. विंटरनित्स का कथन है विशाखदत्त नाटक की संरचना तथा शैली की दृष्टि से भास के चारूदत्त एवं प्रतिज्ञायौगन्धरायण आर शूद्रक के मृच्छकटिकम् से अधिक निकट है।

6. चन्द्रगुप्त द्वितीय का विष्णु भक्त होना तथा राजधानी कुसुमपुर होना भो यह सिद्ध करता है कि विशाखदत्त चन्द्रगुप्त द्वितीय के ही समकालीन रहे होगें।

भरत वाक्य में आए 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' के आधार पर सर्वप्रथम डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल ने विशाखदत्त का सम्बन्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय से स्थापित किया। प्रो. हिलेब्राँ, स्पेयर, टॉनी, आर. एस. पंडित इत्यादि भो विद्वान् भो इससे सहमत है। इस आधार पर विशाखदत्त का समय 400ई. के लगभग मानते हैं ।

बहिःसाक्ष्य के आधार पर भो उपर्युक्त समय की ही पुष्टि होती है।

श्री भोज रचित सरस्वती–कण्ठाभरण में जिसका समय 11वीं शताब्वदी है में मुद्राराक्षस के दो पद्य (1/22 (मु.रा.) स.क. 3/87) (मु.रा. 3/21 तथा सरस्वती 1/68) प्राप्त होते हैं ।

इसी प्रकार 10वीं शताब्दी के धनंजय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक में मुद्राराक्षस का संकेत किया है। 'तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्' (दशरूपक 1/68 के बाद) और भो ''मन्त्रशक्त्या यथा मुद्राराक्षसे राक्षस सहायादीनां चाणक्येन स्वबुद्ध्या भदनम्'' (दशरूपक 2/55 के नीचे)।

मुद्राराक्षस का घटनास्थल पाटलिपुत्र है। मुद्राराक्षस में इसका वर्णन गौरवशाली नगर के रूप में किया गया है। इसे ही कुसुमपुर या पुष्पपुर भो कहा गया है। चीनी यात्री फाह्यान 399 से 411 ई. तक भारत की यात्रा की इन्होंने पाटलिपुत्र का मगध की राजधानी के रूप में वर्णन किया है।

इसके अनन्तर चीनी यात्री ह्वेनसांग 646–699 के मध्य भारत आया था। उसने पाटलिपुत्र का वर्णन भग्नावशेष के रूप में किया है।

इससे स्पष्ट है कि छटी अथवा सप्रम शताब्दी में पाटलिपुत्र की अवस्था वह नहीं थी जो मुद्राराक्षस में प्राप्त होती है।

इन ऐतिहासिक साक्ष्यों से भो स्प्ष्ट हो जाता है कि मुद्राराक्षस की रचना चतुर्थ शताब्दी के अन्त अथवा पंचम शताब्दी के आरम्भ में हुई होगी। इसी आधार पर विशाखदत्त का काल भो यही मानना होगा।

12.4 नाटक का नामकरण

विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य में अपनी अनूढी विशेषताओं के कारण अद्वितीय है। राजनीति घटना प्रधान इस नाटक में मंत्री राक्षस का यह प्रयत्न है कि किस प्रकार चन्द्रगुप्त को गद्दी से हटाया जाये। किन्तु कूटनीतिज्ञ चाणक्य के प्रयत्नों के फलस्वरूप राक्षस अपना अभोष्ट पूरा न कर सका। चाणक्य चन्द्रगुप्त का शुभचिन्तक था। उसकी हार्दिक अभिलाषा थी कि राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाऊँ। उसने गुप्तचरों के द्वारा राक्षस की राजकीय मुद्रा (मोहर) प्राप्त कर ली तथा उस मोहर को लगा–लगाकर राक्षस के समर्थकों को जाली पत्र भजे। परिणामतः राक्षस का सहायकों के साथ मतभद हो गया। राक्षस के प्रिय मित्र चन्दनदास को राक्षस के परिवार को छिपा कर रखने के उद्देश्य से चन्द्रगुप्त की आज्ञानुसार फांसी पर चढाया जा रहा है। राक्षस उसको बचाने का प्रयत्न करता है। चाणक्य कहता है यदि राक्षस चन्द्रगुप्त का मंत्री बनना स्वीकार कर ले तो उसके मित्र को फांसी से बचाया जा सकता है। राक्षस के पास कोई विकल्प न था वह अन्ततः आत्मसमर्पण कर देता है व चन्द्रगुप्त का मंत्रीपद स्वीकार कर लेता है।

इस भाँति यह स्पष्ट है कि चाणक्य की सफलता का एक मात्र साधन 'राक्षस की मुद्रा' ही थी। इसी आधार पर नाटक का नामकरण हुआ है। 'मुद्राराक्षस' अर्थात् मुद्रया परिगृहीतः राक्षसः तदधिकृत्य कृतः ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्।

12.5 नाटक का सामान्य परिचय एवं नाटक की कथावस्तु

नाटक में चाणक्य का प्रमुख लक्ष्य है। महानन्द के अमात्य राक्षस को चन्द्रगुप्त की अमात्य बनाना। वहीं राक्षस नन्द का स्वामीभक्त अमात्य है उसका उद्देश्य है नन्दवंश की पुनर्स्थापना एवं नन्दवंशीय किसी व्यक्ति को मलयक्तु को पाटलिपुत्र का सम्राट बनाना। इसी लक्ष्य को केन्द्र बिन्दु बनाकर इस नाटक में समस्त कूटनीतिक मंत्रणाएँ, षड़यन्त्र, दावपेंच खेले जाते है।

मुद्राराक्षस सात अंकों का मौर्यकाल से सम्बद्ध ऐतिहासिक नाटक है। चाणक्य नन्दवंश का समूल नाश कर चुका है। पाटलिपुत्र पर चन्द्रगुप्त का साम्राज्य है। नन्दवंश का समर्थक पर्वतेश्वर भो चाणक्य की कूटनीति के कारण तपोवन जा चुका है और वहाँ राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने के लिए भजी गई विषकन्या द्वारा उसका वध किया जा चुका है। प्रजा में यह अपवाद फैला दिया गया है कि राक्षस ने ही पर्वतेश्वर को मरवाया है। चाणक्य के विश्वस्त गुप्तचर भागुरायण द्वारा पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकतु को यह विश्वास दिलाकर कि राक्षस ने ही उसके पिता को मरवाया है पाटलिपुत्र से भगवा दिया है। राक्षस की गतिविधियों को जानने के लिए विभिन्न गुप्तचरों की नियुक्ति की जा चुकी है। इनसे पता चलता है कि कुसुमपुर में राक्षस के तीन विश्वासपात्र हैं – 1. क्षपणक जीव सिद्धि (जो वस्तुतः चाणक्य का ही गुप्तचर है) 2. कायस्थ शकटदास 3. मणिकार श्रेष्ठी चन्दनदास (जिसके घर राक्षस ने अपने परिवार को रखा है) चन्दनदास के घर से चाणक्य के गुप्तचार निपुणक को राक्षस के नाम से अंकित एक मुद्रा प्राप्त होती है जिसे वह चाणक्य को सोंप देता है। अंगूठी पाकर राक्षस कहता है ''ननु राक्षस एव अस्मदंगुलिप्रणयी संवृत्तः''।

चाणक्य शकटदास से एक कूट लेख लिखवाकर उसे मुद्रा से अंकित है कर देता है। यही मुद्रा अन्ततः राक्षस के पराजय का कारण बनती है और इसी घटना के आधार पर नाटक का नाककरण भो मुद्राराक्षस (मुद्रया परिगृहीतः राक्षसः तदधिकृत्य कृतो ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्)। पड़ा है। प्रथम अंक के अन्त में राक्षस की सहायता के आरोप में शकटदास को फाँसी एवं चन्दनदास को सपरिवार कारावास की सजा हो जाती है।

प्रथम अंक में जहाँ चाणक्य की राजनीतिक कुशलता हमारे सम्मुख आती है वहीं द्वितीय अंक में राक्षस की कूटनीतिक विशारदता हमारे सम्मुख आती है। प्रारम्भ में राक्षस का गुप्तचर जो कि सपेरे के वेष में है मंच पर प्रविष्ट होता है और कुसुमपुर के वृत्तान्त से राक्षस को अवगत कराता है। उसी से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त को मरवाने के लिए राक्षस की समस्त योजनाएँ विफल हो चुकी है और राक्षस के समस्त गुप्तचर भो जो उसने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए नियुक्त किए थे स्वयं अपनी मौत मारे गए है। अब राक्षस के सम्मुख एक ही विकल्प है कि वह किसी प्रकार चाणक्य व चन्द्रगुप्त के मध्य मतभद करा दे। इस हेतु वह चन्द्रगुप्त के वैतालिक को (जो कि राक्षस का गुप्तचर है) चन्द्रगुप्त को जोश दिलाने वाले स्तुतिपाठ सुनाने को कहता है।

तृतीय अंक में चाणक्य की कूटनीतिक कुशलता अपने चरम परिपाक पर है। चाणक्य प्रारम्भ से ही चन्द्रगुप्त को कृत्रिम कलह हेतु समझा देता है। पाटलिपुत्र में 'कौमुदी महोत्सव' को मनाने की चाणक्य द्वारा मनाही है। चन्द्रगुप्त इससे नाराज होकर चााक्य से इसका कारण जानना चाहता है। इस बात पर दोनों में कृत्रिम क्रोधपूर्ण वाद–विवाद होता है। अन्त में चाणक्य अपने शस्त्र फेंक कर चला जाता है और चन्द्रगुप्त उसे मन्त्रिपद से पृथक् कर देता है। इस बनावटी कलह को राक्षस का गुप्तचर एवं चन्द्रगुप्त का वैतालिक सच मानकर चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध उकसाने के प्रयोजन से स्तुतिपाठ प्रारम्भ कर देता है।

चतुर्थ अंक में राक्षस को गुप्तचरों द्वारा ज्ञात होता है कि चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त में अनबन हो गई है एवं चन्द्रगुप्त ने चाणक्य को मन्त्रिपद से पृथक कर दिया है तब राक्षस समझता है अब चन्द्रगुप्त उसके हाथों में आ गया है।

''सखे शकटदास, हस्ततलगतो मे चन्द्रगुप्तो भविष्यति'' इधर मलयकेतु को भागुरायण (चाणक्य का गुप्तचर) यह विश्वास दिला देता है कि राक्षस का शत्रु चाणक्य है, चन्द्रगुप्त नहीं तो मलयकेतु राक्षस के प्रति अविश्वास करने लगता है। राक्षस एवं मलयकेतु चन्द्रगुप्त पर आक्रमण की योजना बनाते हैं क्षपणक से उसका मुहूर्त पूछते हैं।

पाँचवे अंक में चाणक्य अपनी कूटनीति द्वारा राक्षस एवं मलयकेतु में फूट डालने में समर्थ हो जाता है। चाणक्य के द्वारा प्रथम अंक में लिखवायोद गये। नकली पत्र एवं राक्षस के आभ्षणों के साथ सिद्धार्थक पकड़ा जाता ह एवं मलयकेतु के सम्मुख वह स्वीकार करता है। कि यह पत्र राक्षस ने चन्द्रगुप्त को देने हेतु भजा है इससे मलयकेतु के मन में यह विश्वास हो जाता है कि राक्षस विश्वघाती है। राक्षस पर्वतेश्वर के आभ्षण पहने है (जो उसने द्वितीय अंक में किसी बनिए से खरीदे थे) उन्हें देखकर भो मलयकेतु को यह विश्वास हो जाता है कि राक्षस ने ही उसके पिता पर्वतेश्वर को मरवाया है। इस भाँति चाणक्य की चाल से राक्षस एवं मलयकेतु का भदन हो जाता है।

छठा अंक राक्षस की लम्बी स्वगतोक्ति से प्रारम्भ होता है जिसमें राक्षस अपनी चालों की विफलता एवं भाग्यविपर्यय पर विचार करता है। इसी बीच चाणक्य का एक गुप्तचर आकर गले में रस्सी डालकर मरना चाहता है । राक्षस उसे बचाना चाहता है पर वह बताता है कि उसके मित्र चन्दनदास के वध से दुःखित होकर वह ऐसा कह रहा है। राक्षस अपने मित्र को बचाने के लिए दौड़ पड़ता है।

सातवें अंक में चाणक्य के दो गुप्तचर चाण्डाल बनकर चन्दनदास को वध स्थल पर ले जा रहे हैं चन्दनदास की पत्नी एवं पुत्र विलाप करते है। तभो वहाँ राक्षस आता है एवं चाण्डलों को फटकारता है इसमें वे भाग जाते है तभो चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य आते हैं एवं राक्षस को आत्म समर्पण कर देता है। चाणक्य उसे चन्द्रगुप्त का अमात्य बनने को मजबूर कर देते है। लाचार राक्षस अमात्य बनने को तैयार हो जाता है। इस तरह नाटक का पटाक्षेप होता है।

12.6 नाटक की कथावस्तु का मूलस्रोत

विशाखदत्त ने अपने नाटक का कथानक विष्णु, मत्स्य, वायु, भागवत पुराणों में एवं लोक में प्रचलित चन्द्रगुप्त के विषय म वर्णन है उसी को आधार बनाया है।

शिशुनागवंश का अन्तिम शासक महानन्द का बड़ा पुत्र महापद्म अथवा घनानन्द ही प्रथम नन्द राजा था। महापद्म ने सम्पूर्ण पृथ्वी को एक शासन के अधीन कर लिया था । उसके सुमाल्य इत्यादि आठ पुत्र थे। ये अपने पिता महापद्म के साथ नौ नन्द कहलाए। इन सभो को कौटिल्य ने समूल नष्ट कर दिया एवं चन्द्रगुप्त मौर्य को राजा के रूप में प्रतिष्ठित किया।

बृहत्कथा में भो चन्द्रगुप्त को नन्द का पुत्र कहा है जो उसकी मुरा नामक शूद्रा पत्नी से उत्पन्न हुआ है।

शारदातनय ने भावप्रकाश के 8वें अध्याय में नाटक के भद 'भास्वर' में उदाहरण स्वरूप एक नाटक का उल्लेख किया है जिसके पात्र नन्द एवं चाणक्य है।

कुन्दमाला की भ्मिका में भो एक नाटक का उल्लेख है। जिसका नाम ''प्रतिज्ञा चाणक्य'' है।

दशरूपक के टीकाकार मुद्राराक्षस को 'बृहत्कथा मूल कहते हैं – तत्र' 'बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्'। लेकिन यह मत विद्वानों द्वारा अमान्य है। उसने बृहत्कथा के उपलब्ध संस्करण कथा सरित्सागर तथा बृहत्कथामंजरी को ही बृहत्कथा समझकर उदाहरण के रूप में उपन्यस्त किया है। किन्तु वस्तुतः ये मुद्राराक्षस के उपजीव्य नहीं है। यही कारण है कि प्रो. ध्रुव, श्रीराय तथा मुकर्जी आदि विद्वानों ने भो धनिक के कथन को अग्राह्य माना है।

वस्तुतः मुद्राराक्षस का कथानक ऐतिहासिक होने के साथ साथ अत्यन्त प्रसिद्ध था। नाटक की कथावस्तु के कथानक के लिए चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य से सम्बन्धित प्रचलित कूटनीतिक कथाओं, किंवदन्तियों तथा परम्परागत विषयों से ही अधिक प्रेरणा ली है।, कृति विशेष से नहीं।

12.7 पारिभाषिक शब्दावली

मुद्राराक्षस – 'मुद्राराक्षस' अर्थात् मुद्रया परिगृहीतः राक्षसः तदधिकृत्य कृतः ग्रन्थः मुद्राराक्षसम्।

जीव सिद्धि चाणक्य का ही गुप्तचर है

कौमुदी महोत्सव – प्राचीन भारतीय महोत्सव जो वसन्त के समय आयोजित किया जाता था।

बृहत्कथा – गुणाढ्य कृत संस्कृत वाङ्मय का सबसे प्राचीन कथा स्रोत् ।
भरत वाक्य – किसी भी नाटक की सबसे अन्तिम पंक्ति भरत वाक्य कहलाती है।
पंच सन्धि – चाणक्य के अनुसार राजनीति की सन्धि विग्रह यान आसन द्वैधीभाव ये पाँच सन्धियाँ है।

12.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

लघूत्तरात्मक प्रश्न

निम्न लिखित प्रश्नों के उत्तर अत्यन्त संक्षेप में दीजिये–

1. विशाखदत्त की प्रमुख कृतियों का नामोल्लेख कीजिये–
 ——————————————————————————————
2. विशाखदत्त का काल बताइये?
 ——————————————————————————————
3. विशाखदत्त के पिता एवं पितामह का नामोल्लेख कीजिये?
 ——————————————————————————————
4. नाटक के नामकरण की व्युत्पत्ति कीजिए?
 ——————————————————————————————
5. विशाखदत्त के अर्थशास्त्रीय ज्ञान के परिचायक पाँच शब्दों का उल्लेख कीजिए?
 ——————————————————————————————
6. नाटक के नायक एवं प्रतिनायक का नामोल्लेख?
 ——————————————————————————————
7. राक्षस के तीन विश्वासपात्रों का नाम लिखिए?
 ——————————————————————————————
8. चाणक्य द्वारा किस महोत्सव को मनाने की मनाही की गई थी?
 ——————————————————————————————

विस्तृत प्रश्न

1. विशाखदत्त के शास्त्रीय ज्ञान पर लेख लिखिये?
 ....
 ....
2. विशाखदत्त का काल निर्धारित कीजिये?
 ....
 ....
3. मुद्राराक्षस नाटक के मूलस्रोत का उल्लेख कीजिये?
 ....
 ....
4. मुद्राराक्षस की कथावस्तु पर संक्षिप्त लेख लिखिये?
 ....
 ....
5. नाटक के नामकरण पर टिप्पणी लिखिये?
 ....
 ....

उत्तर

1. देवीचन्द्रगुप्तम्, अभिसारिकावञ्चितम्, मुद्राराक्षसम्।
2. चतुर्थ शताब्दी का अन्त अथवा पंचम शताब्दी का पूर्वार्द्ध।
3. पिता महाराज पृथु तथा पितामह सामन्तवटेश्वरदत्त।
4. मुद्रया परिगृहीतः राक्षसः तदधिकृत्यकृतः ग्रन्थः।
5. कृत्य, सिद्धि, उपाय, षाड्गुण्य, द्रव्य, अद्रव्य........।
6. नायक चन्द्रगुप्त, प्रतिनायक राक्षस।
7. चन्दनदास, शंकरदास, क्षपणक जीवसिद्धि कौमुदी महोत्सव।

अभ्यासों के उत्तर

1.	देखें	–	12.2
2.	देखें	–	12.3
3.	देखें	–	12.6
4.	देखें	–	12.7
5.	देखें	–	12.4

12.9 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने का ज्ञान प्राप्त किया । यह जाना कि कूटनीतिक षड्यन्त्रों से परिपूर्ण, इस कथा का उद्गम किस प्रकार हुआ ।संस्कृत साहित्य के यथार्थवादी एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि के अद्वितोय नाटक मुद्राराक्षस की सम्पूर्ण कथा का परिचय भी विशद से प्राप्त हुआ ।

12.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नाट्यशास्त्र,पं. बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2005.
2. साहित्य दर्पण,(विश्वनाथ कृत) आचार्य लोकमणि दाहाल, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नईदिल्ली,२०१५.
3. नाट्य दर्पण,रामचन्द्र गुणचन्द्र, ओरियण्टल संस्कृत सीरीज, गायकवाड, १६२८.
4. काव्यानुशासनम्,हेमचन्द्र,निर्णयसागरप्रेस, बम्बई,१६३४.
5. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन वाराणसी,1953.
6. संस्कृत कविदर्शन– भोलाशंकर व्यास– चौखम्बा विद्याभवन,2003.
7. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
8. हिन्दी दशरूपकम्,डॉ. भोला शंकर व्यास, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2003.

इकाई 13

नाटककार विशाखदत्त : भाषा शैली, नाटकीय विशेषतायें नाटक की शास्त्रीय विशेषतायें

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

एम. ए. पूर्वार्द्ध संस्कृत के प्रश्नपत्र द्वितीय की इकाई 12 के अन्तर्गत आप नाटककार विशाखदत्त की भाषा शैली, मुद्राराक्षस नाटक की नाटकीय एवं शास्त्रीय विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस अध्ययन के उपरान्त आप–

1. नाटककार विशाखदत्त की भाषा एवं शैली को समझ सकेंगे।
2. कथानक की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में अनुपम नाटक मुद्राराक्षस के वैशिष्ट्य को जान सकेंगे।
3. नाटक का निर्माण कैसे करना चाहिए, उसमें किन–किन तत्त्वों का सन्निवेशः होना चाहिए वे तत्त्व क्या है? उनका स्वरूप क्या है इत्यादि शंकाओं का समाधान कर सकेंगे।
4. मुद्राराक्षस नाटक में इन तत्त्वों का अनुशीलन किस प्रकार से किया गया है इसको भो आप जान सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

एम. ए. पूर्वार्द्ध संस्कृत प्रश्न–पत्र द्वितीय ललित साहित्य एवं नाटक के अन्तर्गत आप संस्कृत साहित्य के विश्वविख्यात नाटकों में का परिचय प्राप्त कर रहे हैं। इसी क्रम में ग्यारहवीं ईकाई में आप संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य नाटककार विशाखदत्त के विश्वविख्यात नाटक मुद्राराक्षस की कथावस्तु को जान चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आप मुद्राराक्षस नाटक की विशेषताओं, नाट्यशास्त्रीय विशेषताओं एवं कवि विशाखदत्त की भाषा एवं शैली का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

मुद्राराक्षस का कथानक संस्कृत नाटकों के परम्परागत ढर्रे पर नहीं चलता है। संस्कृत नाटकों की रोमानी परम्परा एवं प्रणय–चित्रण को छोड़कर राजनीतिक घटनाक्रम का चित्रण ही मुद्राराक्षस की अद्वितीयता है। यह राजनीतिक षड़यन्त्र का, कूटनीतिक दाँव–पेच का

नाटक है। नाटक का व्यापार सतत क्रियाशील है। नाटक का समस्त कुतूहल दोनों पक्षों की चाल और अपने मोहरे को बचाकर दूसरी चाल चलने की चतुरता में है। नाटक की शैली गम्भोर, सशक्त तथा स्पष्ट है। इससे नाटक में बोझिल नीरस न होकर सर्वत्र नाटकीय व्यापार को गत्यात्मकता मिलती है। मुद्राराक्षस नाटक की शैली विषयानुरूप है। इसमें कवि ने सर्वत्र औचित्य का ध्यान रखा है।

घटनाक्रम की गत्यात्मकता, नाटकीय कुतूहल, दृश्यों का स्वभाविक विनियोग और सामाजिक प्रभाव नाटक के इन समस्त स्वाभाविक गुणों का मुद्राराक्षस नाटक में पूर्ण ध्यान रखा गया है। कहीं भो कविता ने नाटकीयता को क्षुण्ण नहीं बनाया है। यही इस नाटक सफलता है।

13.2 नाटक की शैली

नाटककार विशाखदत्त की शैली सुस्पष्ट, प्रभावशाली तथा प्रवाह के औचित्य से परिपूर्ण है। नाटक में प्रसाद, माधुर्य एवं ओज तीनों ही गुणों का स्वाभाविक रूप से प्रयोग हुआ है किन्तु फिर भो उसमें प्रसाद गुण की प्रधानता दिखाई देती है। उसमें स्थान–स्थान पर गंभोरता, सशक्तता एवं प्रभावोत्पादकता के दर्शन होते हैं। कथावस्तु का निर्वाह कलात्मक दृष्टि के अनुरूप हुआ है। उनकी शैली उनके विषय के अनुरूप है। नाटकीय प्रवाह एवं प्रभाव को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए वे निरर्थक कलापक्ष में नहीं उलझे है। अपनी इस शैली के वे स्वयं ही निर्माता तथा निर्वाहकर्ता हैं। ''राजनीतिक धोखा किस भांति दिया जाना उचित कहा जा सकता है ''इसका सूक्ष्म एवं यथार्थ विश्लेषण ही उनकी कला की प्रमुख विशेषता है।

सामान्यतः मुद्राराक्षस का नाट्यविधान द्वन्द्वात्मक है कुछ विद्वानों ने प्रथम अंक में वर्णित चाणक्य की स्वगतोक्ति तथा षष्ठ अंक में वर्णित राक्षस की स्वगतोक्ति को नाटकीय दृष्टि से दोष युक्त माना है किन्तु वस्तुतः विशाखदत्त ने उनका प्रयोग पात्रों के व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए ही किया है। चाणक्य की स्वगतोक्ति से चाणक्य की राजनीति का विशद विवेचन प्राप्त होता है तथा राक्षस की स्वगतोक्ति से उसकी मानवीय प्रकृति का, उसकी कोमलता भावुकता का ज्ञान होता है।

विशाखदत्त की शैली की एक प्रमुख विशेषता है उनका 'श्लेष'। श्लेष का प्रयोग अधिकांश रूप में व्यंग्यार्थ की दृष्टि से किया है। सभो पताका स्थानक इसी श्लेष पर आश्रित है। जैसे प्रथम अंक का छठा श्लोक इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है

क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रम् सम्पूर्णमण्डलमिदानीम्।

अभिभवितुमिच्छति बलात्....

आः क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिमवितुमिच्छति बलान् ?

नेपथ्ये रक्षत्येनं तु बुधयोगः।।   मु. रा. 1/6

अलंकार सम्बन्धी नाटककार की दूसरी विशेषता है बिम्बप्रतिबिम्ब भाव पर आश्रित उपमा प्रयोग। ''भग्यन्तरकथन'' उनकी शैली की एक अन्य विशेषता है। इसका तात्पर्य है नाटककार जिस बात का वर्णन पहले गद्य में करता है, उसी का वर्णन उसके पश्चात् पद्य में भो कर देता है यथा–

आहितुण्डिकः (स्वगतं संस्कृतमाश्रित्य) अहो आश्चर्यम् ! चाणक्यमति परिगृहीतं चन्द्रगुप्रमवलोक्य विफलामिव राक्षसप्रयत्नमवगच्छामि। राक्षसमति परिगृहीतं मलयकेतुमवलोक्य चलितमिवाधिराज्याच्चन्द्रगुप्रमवगच्छामि। कुतः

कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्ति

मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य लक्ष्मीम्।

उपायहस्तैरपि राक्षसेन

निष्कृष्यामाणामिव लक्षयामि।। 2/2

इस भाँति नाटककार विशाखदत्त की शैली ओजस्विनी एवं प्रवाह युक्त है। यहाँ अलंकारो का भो सीमित प्रयोग हुआ है। प्रधान अंगी रस वीर है। यह चाणक्य की उक्तियों में विशेष रूप से उपलब्ध होता है।

13.3 नाटक की भाषा

नाटककार विशाखदत्त ने नाटक में गद्य एवं पद्य दोनों में ही कोमल, सरस एवं औचित्यपूर्ण पदावली का प्रयोग किया है। भावों अनुकूल ही भाषा का प्रयोग हुआ है। नाट्य प्रवाह को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए उन्होंने पद्यों का बहुत अधिक प्रयोग नहीं किया है। संस्कृत के अतिरिक्त शौरसेनी, महाराष्ट्री तथा मागधी प्राकृत का प्रयोग भो नाटक में किया गया है।

इनके वाक्य छोटे–छोटे किन्तु सुसंगठित है।

चाणक्य – शाङ्र्गरव! शाङ्र्गरव।

शिष्यः – उपाध्याय! आज्ञापय

चाणक्य – वत्स! मसीभाजनं पत्रं च उपानय।

शिष्यः – यदाज्ञापयति। उपध्याय। इदं मसीभाजनं पत्रं च।

चाणक्यः – किमत्र लिखामि? अनेन खलु लेखेन राक्षसो जेतव्यः।

सशक्त एवं प्रभावोत्पादक शब्द विन्यास है। संवादों में स्वाभाविकता है। कभो–कभो तो एक ही शब्द के प्रयोग से नाटककार अधिक से अधिक अभिप्राय को प्रकट करने में समर्थ होता है। यथा राक्षस का निम्न कथन–

''सत्यं नगरान्निष्क्रामतो मम हस्ताद् ब्राह्मण्या उत्कण्ठा विनोदार्थं गृहीता।''

यहाँ 'ब्राह्मण्या' शब्द राक्षस के हृदयगत भावो की घनीभत् वेदना को अभिव्यक्त कर रहा है।

कवि ने वैदर्भा का प्रयोग कर भाषा में गत्यात्मकता एवं प्रवाह लाने का प्रयत्न किया है।

विशाखदत्त का गद्य ओज से समन्वित है। उनके पद्यों में भो लालित्यपूर्ण प्रवाह का दर्शन होता है यथा

आस्वादितद्विरदशोणितशोणशोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य
जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्। 1/8

इस नाटक का विषय बौद्धिक स्तर का है फलतः इसमें जटिल एवं नीरस गद्य का प्रयोग है पर काव्योचित उदात्तता का अभाव नहीं है।

विशाखदत्त ही वह नाटककार है जिन्होंने नाटक की वास्तविकता को समझकर नाटक लिखा है और उसे काव्यात्मक दोष से बचाया है। इसमें माधुर्य एवं ओज गुणों की प्रचुरता है राजनीति, नीति एवं आचार शिक्षा के वर्णनों में वैदर्भा रीति ही प्रमुख है।

समासोक्ति, अर्थान्तरन्यास प्रस्तुत प्रशंसा का सुन्दर प्रयोग है।

विशाखदत्त ने अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। किन्तु उनका ध्यान शार्दूलविक्रीडित तथा स्रग्धरा की ओर अधिक है जो कि नाटक के गम्भोर विषय के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करने में सहायक बन पड़े है। वे लाक्षणिक संवादों के विलक्षण शिल्पी है।

पताकास्थानक की सटीक योजना ने मुद्राराक्षस के संवादों मे चमत्कार ला दिया है।

चाणक्य – (आत्मगतम्) अपि नाम दुरात्मा राक्षसो गृह्येत?

सिद्धार्थ – आर्य गृहीतः।

चाणक्य – (सहर्षमात्मगतम्) हन्त, गृहीतो राक्षसः (प्रकाशम्) भद्र। कोऽयं गृहीतः?

सिद्धार्थ – गृहीतः आर्यसन्देशः

छठे अंक में श्मशान के वर्जन में उन्होंने मालोपमा, अमूर्त उपमान तथा उत्प्रेक्षा की मनोहर लड़ी दी है। यह समग्र वर्जन राक्षस की विवादग्रस्त मनोदशा का चित्रण करता है।

13.4 मुद्राराक्षस की नाटकीय विशेषतायें

कथावस्तु, शैली एवं टेकनीक की दृष्टि से मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। यह नाटक विशुद्ध कूटनीति से परिपूर्ण राजनीति प्रधान नाटक है। इसका संविधान संस्कृत नाटको के परम्परागत ढर्रे पर नहीं चलता। इसमें ऐसी निजी मौलिकता है जो इसे अन्य संस्कृत नाटको से पृथक् करती है।

(1) किसी नायिका का न होना इस नाटक की प्रमुख विशेषता है। सम्पूर्ण नाटक में केवल एक स्त्री पात्र (चन्दनदास की पत्नी) मंच पर प्रवेश करता है किन्तु कथावस्तु के विकास में उसका कोई योगदान नहीं है।

(2) नाटक के वातावरण को स्निग्ध एवं ललित बनाने वाले विदूषक का भो इस नाटक में अभाव है। घटनाओं की गति शीलता के कारण इसका अभाव खटकता नहीं है।

(3) मुद्राराक्षस राजनीति षड़यन्त्र का कूटनीति के दाँव पेंच का नाटक है। वीररस प्रधान इस नाटक में वीररस को उद्दीप्त करने हेतु न तो दुन्दुभि की गड़गड़ाहट। मुद्राराक्षस की लड़ाई चाणक्य एवं राक्षस की नहीं अपितु उनकी मन्त्रशक्तियों की लड़ाई है, नाटक का सारा कुतुहल दोनों की चाल और अपने मोहरे को बचा कर दूसरी चाल चलने की चतुरता में है।

इसमें न तों कोई रक्तपात होता है और न ही कोई सैनिक हताहत होता है फिर भो विजय एवं पराजय का परिणाम सामने आ जाता है। श्रृंगार एवं हास्य रस का नाटक में अभाव है। नाममात्र की भो हिंसा रक्तपात के बिना नाटक में वीररस का वर्णन है।

(4) नाटक का व्यापार पूर्णतया गत्यात्मक है। प्रारम्भ से अन्त तक कहीं भो घटनाओं में असम्बद्धता अथवा विरूपता नहीं आती है।

(5) इस नाटक में किसी भो धर्म अथवा सम्प्रदाय के प्रति विशिष्ट आस्था नहीं दिखती है। ''कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि'' का अक्षरशः पालन हुआ है।

(6) चरित्र–चित्रण भो इस नाटक की प्रमुख विशेषता है। इसमें अधिकांश पात्रों का चित्रण युगल रूप में हुआ है यथा–

(अ) कूटनीति प्रधान राजनीति में चतुर चाणक्य एवं राक्षस

(ब) परस्पर विरोधी गुणों से युक्त एक दूसरे के विरोधी राजा चन्द्रगुप्त एवं मलयकेतु

(स) भागुरायण एवं सिद्धार्थक

(7) अंकों का पृथक्–पृथक् दृश्यों के साथ विभाजन करना भो इस नाटक की अपनी एक पृथक् विशेषता है। यह नाटककार की मौलिकता की प्रतीक है। इस नाटक में विलक्षण कथावस्तु की योजना तथा सुव्यस्थित दृश्य विधान का अपना एक विशिष्ट स्थान है।

(8) इस नाटक का कथानक इतना पेचीदा तथा गहरा है कि न तो दर्शक की जिज्ञासा शान्त होती है और न ही कौतूहल का कहीं अवसान होता है। सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य तथा राक्षस एक दूसरे को कूटनीति से परास्त करने के उद्देश्य से इतनी घटनाओं का विन्यास कर देते है कि वे सब विच्छिन्न एवं विश्रृंखल सी जान पड़ती है अन्त में जब जाल खींचा जाता है तो समग्र घटनाओं का संघटित फल एक साथ ही उद्बुद्ध हो दर्शकों के सम्मुख आ जाता है।

इस प्रकार से सुघटित कथा वस्तु की योजना में, वैवक्तिकता से मण्डित पात्रों के चित्रण में, ओजस्वी वायुमण्डल की अवतारणा में तथा वीररस की अभिव्यंजना में मुद्राराक्षस संस्कृत साहित्य का एक सफल नाटक है।

13.5 नाटक की शास्त्रीय समीक्षा कथावस्तु का विभाजन

भरतमुनि तथा उत्तरवर्ती नाट्यशास्त्रकारों ने रूपक के दस भद स्वीकार किए है। इनमें से नाटक में ही सभो तत्त्वों (वस्तु, नेता और रस) तथा तत्सम्बन्धी सभो अंगों का समावेश होने से इसे ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

कथावस्तु के दो भद करते हुए दशरूपककार का कथन है।

''वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्ग प्रासंङ्गिक विदुः अधिकारिक मुख्य कथावस्तु है जैसे मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त, चाणक्य तथा राक्षस की कथा मुख्य की अभ्त कथावस्तु प्रासकि कहलाती है जैसे मुद्राराक्षस में भागुरायण, मलयकेतु, चन्दनदास इत्यादि की कथा।

द्वेधा विभागः कतव्यः सर्वस्यापीह वस्तुनः।

सूच्यमेव भवेद् किञ्चिद् दृश्यश्रव्यमथापरम्, द.रु. 1/56

अभिनय की दृष्टि से समस्त कथावस्तु दो भागों में विभक्त होनी चाहिए कुछ तो सूच्य हो एंव दूसरी श्रव्य तथा दृश्य

नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तरः।

दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तरः। द.रु. 1/57

कथावस्तु का जो भाग नीरस हो, अनुचित (मृत्यु, युद्धादि) हो लेकिन कथावस्तु को अक्षुण्ण बनाने के लिए आवश्यक हो उसकी सूचना दे देनी चाहिए। किन्तु जो भाग चित्ताकषक, उदात्त रस एवं भाव से पूर्ण हो उसे रङ्गमंच पर दिखाना चाहिए (दृश्य)

सूच्य कथावस्तु को पाँच अर्थोपक्षकों द्वारा सूचित किया जाता है।

अर्थोपक्षेपकैः सूच्यं पञ्चभिः प्रतिपादयेत्।

विष्कम्भकचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकैः। द.रु. 1/58

ये है विष्कम्भक, चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार एवं प्रवेशक

इनमें से नाटककार विशाखदत्त द्वारा चूलिका, अंकावतार (7) एवं प्रवेशक का ही प्रयोग किया गया है। (6–7 अंक में) नाट्यधर्म की दृष्टि से कथावस्तु के फिर तीन भद है

नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते

सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेवच।

सर्व श्राव्यं प्रकाशं स्यादश्राव्यं स्वगतं मतम्

द्विधाऽन्यन्नाट्यधर्मः स्याज् जनान्तमपवारितम्।।

जो कथावस्तु सबके सुनने योग्य वह सर्वश्राव्य (प्रकाश) कहलाती है। जो मञच पर स्थित अन्य पात्रों को सुनाने के लिए नहीं अपितु केवल दर्शकों को सूचित की जाती है वह अश्राव्य अथवा स्वगत कथन कहलाती है और जो कथा मञ्च पर स्थित कुछ ही पात्रों को सूचित करने के लिए होती है वह नियत श्राव्य कहलाती है। इसके भो दो भद है जनान्तिक एवं अपवारित। आकाशभाषित भो एक अन्य भद है।

मुद्राराक्षस नाटक में कथावस्तु में से जनान्तिक, आकाशभाषित, चूलिका, अङ्कावतार (सातवां अंक) प्रवेशक (6–7 के मध्य) पताका स्थानक, प्रकरी, बहुतायत में प्राप्त होते हैं।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से कथावस्तु के विभाजन को तीन प्रकार से समझा जा सकता है।

(1) **कथावस्तु**

आधिकारिक	प्रासङ्गिक	
पताका	प्रकरी	
प्रख्यात	उत्पाद्य	मिश्र

अभिनय की दृष्टि से कथावस्तु का विभाजन

(2) कथावस्तु

सूच्य	दृश्य, श्रव्य		
अर्थोपक्षेपक			
विष्कम्भक	चूलिका अंकास्य	अंकावतार	प्रवेशक

नाट्यधर्म की दृष्टि से कथावस्तु

(3) कथावस्तु

सर्वश्राव्य	नियत श्राव्य	अश्राव्य (स्वगतकथन)

(प्रकाश)
जनान्तिक अपवारित

13.6 शास्त्रीय विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन

नाट्यशास्त्रियों द्वारा नाटक की कथावस्तु के सुगुम्फन हेतु नाटक में अर्थप्रकृति, अवस्थापंचक एवं पाँच संधियों का होना आवश्यक माना गया है।

नाट्यं ख्यातवृत्तम् स्यात् पञ्चसंधिसमन्वितम्

भट्टनारायण के वेणीसंहार नामक नाटक में इन तत्त्वों के समग्र परिपालन के कारण एक शास्त्रीय वातावरण देखा जा सकता है लेकिन इससे रसबोध में कहीं बाधा भो होती है। इसीलिए विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस नामक नाटक में प्रतिपल अभिनय एवं रसबोध को दृष्टिगत रखते हुए इन तत्त्वों का अनुशीलन किया है। इसीलिए दृश्यकाव्य की कसौटी पर अन्य नाटको की परख करते हुए मुद्राराक्षस को सर्वप्रथम गिना जा सकता है। स्वयं नाटककार विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस के पाँचवे अंक के तृतीय श्लोक मुहुर्लक्ष्योद्भदा..... में पाँचों संधियों के विषय में बताया है। साथ चतुर्थ अंक के तृतीय श्लोक कायोपक्षेपमादौ तनुमपि..... में भो नाटक में इन संधियों के विनिवेश के समय नाटककार को होने वाले क्लेश का उल्लेख किया गया है।

इन शास्त्रीय तत्त्वों को मुद्राराक्षस में परखने से पूर्व हम इनकी संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।

''इतिवृत्तं तु नाट्यस्य शरीरं परिकीर्तितः'' ना. शा. 19/1

नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने कथावस्तु को नाटक का शरीर कहा है। दशरूपककार नाट्य का प्रयोजन त्रिवर्ग की प्राप्ति कहते है।

''कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च'' द.रू. 1/16

अर्थ प्रकृति –

नाटकीय संदर्भों में इन उद्देश्यों की प्राप्ति के निमित्त जो कार्य या उपाय किये जाते हैं उन्हे 'अर्थ प्रकृति' कहते हैं। अर्थप्रकृतयः प्रयोजन सिद्धिहेतवः। यहा अर्थ शब्द फल या प्रयोजन का वाचक है और प्रकृति है हेतु या कारण 'इस प्रकार फल की सिद्धि के उपाय ही अर्थप्रकृतियाँ है।

इसके पाँच प्रकार है बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य–

बीजबिन्दुपताकाप्रकरीकार्यलक्षणः।
अर्थप्रकृतयः पञ्च ता एताः परिकीर्तिताः।। द. रू. 1/18

बीज –

नाटक म जिस कथा का प्रारम्भ में सूक्ष्म रूप से संकेत होता है तथा बाद में अनेक प्रकार से विस्तार ही बीज है।

बिन्दु –

विच्छिन्न कथावस्तु को जिस कथावस्तु द्वारा आगे बढ़ाया जाता है वह बिन्दु है।

पताका एवं प्रकरी –

इन दोनों अर्थप्रकृतियों के आधार पर प्रासंगिक कथावस्तु के द्वारा मुख्य कथानक का उपकार किया जाता है।

कार्य –

जिस फल प्राप्ति के निमित्त सम्पूर्ण सामग्री एकत्रित की जाती है उसे कार्य कहते है।

अवस्था पञ्चकम् –

फल प्राप्ति के इच्छुक पात्रों द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य की पाँच अवस्थायें होती है आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम–

अवस्था पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः।। द.रू. 1/19

आरम्भ – प्रचुर फल प्रप्ति के लिए उत्सुकता मात्र होना ही आरम्भ है यहाँ प्रयत्न नहीं होता।

यत्न – फल प्राप्ति के लिए अत्यन्त वेगपूर्वक जो व्यापार किया जाता है

वह यत्न है।

प्राप्त्याशा – जहाँ फल प्राप्ति की आशा उपाय तथा अपाय ;विघ्नादिद्ध की आशंकाओं से घिरी रहती है फिर भो प्राप्ति की संभावना रहा करती है वही प्राप्त्याशा है।

नियताप्ति – विघ्न हट जाने पर फल प्राप्ति का नितान्त निश्चय ही नियताप्ति है।

फलागम – अभोष्ट वस्तु का पूर्णरूप से मिल जाना फलागम है।

पञ्चसंधियाँ –

रूपकों के संदभ में संधि से तात्पर्य है किसी रूपक की कथावस्तु की सुव्यवस्थित योजना अर्थात कथानक को विभक्त करके ठीक रूप से संगठित करना।

ये संधियाँ पाँच है। मुख, प्रतिमुख, गभ, विमर्श, निर्वहण

अन्तरैकार्यसम्बन्धे सन्धिरेकान्वये सति।

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः।। द.रू. 1/23

इनका संक्षिप्त विवरण है–

बीज	+	आरम्भ	=	मुख संधि
बिन्दु	+	प्रयत्न	=	प्रतिमुख संधि
पताका	+	प्राप्त्याशा	=	गभ संधि
प्रकरी	+	नियताप्ति	=	विमर्श संधि
कार्य	+	फलागम	=	निर्वहण संधि

निष्कर्षतः मुख से कार्य प्रारम्भ होता ह, प्रतिमुख में वह वृद्धि को प्राप्त होता है, गभ में वह उत्कष को प्राप्त करता है, विमर्श में वह फल की ओर झुकता है तथा निर्वहण में वह पूर्ण सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

नाट्यशास्त्रीय इन तत्त्वों के संक्षिप्त विवेचन के उपरान्त मुद्राराक्षस में पाँच संधियों का निर्वहण किस प्रकार से हुआ है इस पर चर्चा करेंगें।

13.7 मुद्राराक्षसनाटक में पञ्चसंधियों का विनिवेश

मुखसंधि –

मुखं बीज समुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा

रूपक के जितने कथांश में फल–प्राप्ति के मुख्य उपाय बीज की सम्यक् उत्पत्ति हो जाती है तथा प्रारम्भ नाम की कार्यावस्था पूर्ण हो जाती है वह मुखसंधि है। वह प्रसंगानुसार रस निष्पत्ति का हेतु हुआ करती है।

मुख संधि में बीज अर्थप्रकृति तथा आरम्भ नामक अवस्था का संयोग होता है। मुद्राराक्षस नाटक के प्रथम अंक में (ततः प्रविशति मुक्तां शिखां परामृशंश्चाणक्यः) कथय क एष मयि स्थिते चन्द्रगुप्तमभिभवितुमिच्छति। चाणक्य के इस कथन से मुख संधि का निबन्धन किया गया है। यहाँ राक्षस को वश में करना कार्य है तथा चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी को स्थिर करना उस कार्य का फल है।

अथवा अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य, किं वा स्थैर्यं मुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः

अनुकूल भाग्य हेतु है और चाणक्य की नीति का प्रयोग बीज है। उस बीज की आरम्भावस्था चाणक्य की उत्सुकता है और चाणक्य की उत्सुकता है कि कौन मेरे रहते हुए भो मेरे पुरुषार्थ को कुछ न समझकर मौर्य लक्ष्मी का हरण करना चाहता है। अतः अत्यन्त वीर, दण्डनीति में निष्णात तथा स्वामी नन्द के कार्य–भार को वहन करने में समर्थ राक्षस को अवश्य वश में करना चाहिए।

चाणक्य –

अतएवास्माकं त्वत्संग्रहे प्रयत्नः, कथमसौ

वृषलस्य साचिव्यग्रहणेन सानुग्रहः स्यादिति। प्रथम अंक

भागुरायण का कुसुमपुर से भागना एवं मलयकेतु की सेवा में जाना भो बीज न्यास है।

सम्पूर्ण यमपटचर का कथानक, अपने पक्ष में अनुरक्त तथा विरक्त व्यक्तियों को जानने की इच्छा मुद्रा प्राप्ति इस अवान्तर प्रयोजन को प्रतिपादन करने के लिए है।

प्रतिमुख संधि –

बिन्दु अर्थ प्रकृति तथा प्रयत्नावस्था का संयोग प्रतिमुख संधि होती है।

''लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदातस्य प्रतिमुखं भवेत्'' द.रू.

जहाँ उस बीज का कुछ लक्ष्य रूप में तथा कुछ अलक्ष्य रूप में उद्भद होता है वहाँ प्रतिमुख संधि होती है। यहाँ नायक व्यापार की प्रयत्नावस्था का वर्णन होता है। मुद्राराक्षस नाट्क के प्रथम अंक में चाणक्य एक बार पुनः राक्षस को अपने वश में करने के लिए नवीन प्रयत्न प्रारम्भ कर देता है। मुद्राप्राप्ति के उपरान्त कूटलेख लिखने का प्रयत्न करता है।

चाणक्यः (पत्रं गृहीत्वा स्वगतम्) किमत्र लिखामि। अनेन खलु लेखेन राक्षसो जेतव्यः।

प्रथम अंक में ही पूर्वयोजनानुसार जब वधभ्मि से सिद्धार्थ शंकटदास को ले भागता है तब स. चाणक्य का कहना कृतः कार्यारम्भः यह भो बिन्दु है। चाणक्य के समस्त प्रयत्नों का उल्लेख प्रथम अंक के अन्तिम श्लोक में देखा जा सकता है।

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वल........... मु. रा. 1/27

राक्षस को वश में करने की चाणक्य की समस्त योजनायें प्रथम अंक में प्रारम्भ हो चुकी है।

गर्भ संधि –

गर्भस्तु दृष्ट नष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः ।

जहाँ दिखलाई देकर खोए गए बीज का बार–बार अन्वेषण किया जाता है वह गभसन्धि है। इसमें पताका नामक अर्थप्रकृति एवं प्राप्त्याशा नामक अवस्था होती है।

गभसंधि में बीज अन्तर्निविष्ट सा रहता है वह कभो प्रकट हो जाता है कभो छिप जाता है। अतः उसका बार–बार अन्वेषण किया जाया करता है। इस प्रकार का बीज प्राप्त्याशा का प्रदर्शक होता है। तेजव्यः।

मुद्राराक्षस नाटक में यह गभसन्धि द्वितीय अंक से प्रारम्भ होकर चतुर्थ अंक तक चलती है। यहाँ

गभसन्धि का अभ्ताहरण नामक अंग है जिसका कि लक्षण दशरूपक में अभ्ज़ा हरणं छद्म अर्थात् छलपूर्ण कार्य ही अभ्ता हरण बताया है। आहितुण्डक का सम्पूर्ण प्राकृत वचन अभ्ताहरण है।

विरूद्धयोभशमिह मन्त्रिमुख्ययो.......... (मु.रा. 2/3) श्लोक में चन्द्रगुप्त को राजलक्ष्मी की प्राप्ति होगी अथवा नहीं यह अनिश्चय होने के कारण प्राप्त्याशा नामक अवस्था है।

द्वितीय अंक में ही राक्षस तथा विराधगुप्त के मध्य संवाद जिसमें वह कुसुमपुर के वृत्तान्त का वर्णन करता है पताका नामक अर्थप्रकृति है।

राक्षस के उपाय रूपी बीज कुछ सफल होते हैं कुछ असफल। चाणक्य की भो नवीन उपायों की बीजगर्भिता यहाँ देखी जा सकती है। जबकि सिद्धार्थक को दिए जाते है और वह उनको राक्षस पास ही भज देता है।

यहीं पर दारु वर्मा का चन्द्रगुप्त को मारने के लिए तोरण बनाना राक्षस का प्रयत्न है एवं चाणक्य द्वारा उसे निष्फल कर देना उसका नष्ट होना है।

'अन्वेषणं मुहुः' को अभयदत्तादियों के प्रयत्न में देखा जा सकता है। द्वितीय अंक में सर्वत्र राक्षस की प्राप्त्याशा विद्यमान है और इसी कारण राक्षस पुनः राजनीति में प्रवृत्त होता है।

विमर्श सन्धि –

गर्भसन्धौ प्रसिद्धस्य बीजस्यावमर्शनम्।
हेतुना येन केनापि विमर्शसन्धिरूच्यते।।

गभ सन्धि में फल–प्राप्ति की सम्भावना रहती है, बीज का उद्भद हो जाता है किन्तु फिर क्रोध, व्यसन, विलोभन या शाप आदि के कारण विघ्न उपस्थित हो जाने से नायक फल–प्राप्ति के विषय में विमर्श (ऊहा–पोह) करने लगता है। तत्पश्चात् विघ्न हट जाने पर फल–प्राप्ति का निश्चय (नियत अपि) हुआ करता है। इस प्रकार जहाँ नियताप्ति कार्यावस्था

से समन्वित होकर बीज गभ सन्धि की अपेक्षा और अधिक प्रकट हो जाता है वह प्रधानवृत्त का भाग विमर्शसंधि है।
मुद्राराक्षस नाटक के तृतीय अंक में नियताप्ति अवस्था तथा चतुर्थ अंक में प्रकरी अर्थ प्रकृति का वर्णन होने से दोनों अंकों में विमर्श संधि है।
नाटक के तृतीय अंक के 13 वें श्लोक में चाणक्य द्वारा अपने कार्यों का विमर्श करते हुए सफलता के प्रति आशवस्त होना भो नियताप्ति है

मद्भृत्यैः किल सोऽपि पर्वतसुतो व्याप्तः प्रविष्टान्तरै
रूद्युक्ताः स्वनियोगसाधनविधौ सिद्धार्थकाद्याः स्पशाः।
कृत्वा संप्रति कैतवेन कलहं मौर्येन्दुना राक्षसं
भेत्स्यामि स्वमतेन भेदकुशलस्त्वेष प्रतीपं द्विषः।।

शत्रु राक्षस को अपनी बुद्धि के अनुसार पृथक् कर दूंगा यहाँ चाणक्य को फलप्राप्ति का निश्चय है अतः नियताप्तिकार्यावस्था है।
विमर्श संधि का राक्षस के पक्ष में सर्वथा अभाव है। वह फल प्राप्ति के लिए सदा शंकित है।
चतुर्थ अंक में भागुरायण द्वारा मलयकेतु को राक्षस के विरूद्ध संदेह मे डालने वाला वृत्तान्त भो चाणक्य को विजय को संकेतित करने के कारण नियताप्ति है।
भागुरायण–किन्त्वमात्यराक्षसश्चाणक्ये बद्धवैरो न चन्द्रगुप्ते। तद्यपि कदाचित्............. चामात्यराक्षसश्चन्द्रगुप्तेन सह संदधीत। चन्द्रगुप्तोऽपि.........संधिनुमन्येत। एवं सत्यस्मासु कुमारो न विश्वसेदित्यर्थमैषां वाक्यार्थः।।
(चतुर्थ अंक)

निर्वहण संधि –

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्।
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।।   द. रु. 1/48

जहाँ बीज से सम्बन्ध रखने वाले मुख संधि आदि में अपने–अपने स्थान पर बिखरे हुए अर्थों का एक प्रयोजन के साथ सम्बन्ध दिखलाते हुए उपसंहार किया जात है वह निर्वहण संधि कहलाती है। मुद्राराक्षस नाटक में अमात्य राक्षस को वश में करने का प्रधान कार्य एवं चन्द्रगुप्त की राजलक्ष्मी को स्थिर करने हेतु प्रथम अंक से जिन कार्यों का प्रारम्भ किया गया था उनका निर्वहण नाटक में षष्ठ एवं सप्तम अंक में किया गया है।
अंक के आरम्भ में सिद्धार्थक की यह उक्ति कार्य को बताती है–

बुद्धिजलनिर्झरैः सिच्यमाना देशकालकलशैः।
दर्शयिष्यति कार्यफलं गुरुकं चाणक्यनीतिलता।।

सप्तम अंक में जीर्णोद्यान में स्थित राक्षस के पा स;चाणक्य की नीति के तहतद्ध आत्म हत्या करने वाली व्यक्ति पहुँचता है परिणामतः अपने मित्र चन्दनदास की मुक्ति के लिए राक्षस आत्मसमर्पण कर देता है। सप्तम अंक के पाँचवें श्लोक

''दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरुचौ............ शत्रुत्वमेषोऽस्मि सः''

में राक्षस का समर्पण दर्शाया है जिसकी सूचना कपटवेशधारी चाण्डालों द्वारा चाणक्य को दी जाती है।
चाण्डाल – एष आर्यनीतिसंयमितबुद्धि परिसरो गृहीतोऽमात्यराक्षस इति।
राक्षस को वश में करने का कार्य सप्तम अंक के 14 वें श्लोक तक हो गया है अब राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाने का कार्य भो चाणक्य द्वारा निष्पादित किया जा रहा है।
चाणक्य – अमात्य राक्षस, अगृहीतशस्त्रेण भवतानुगृह्यते वृषल इत्यतः सन्देहः। तद्यदि चन्दनदासस्य जीवितमिच्छसि ततो गृहयतामिदं शस्त्रं।
राक्षस –
विष्णु गुप्त, नमः सर्वकार्य प्रतिपत्ति हेतवे सुह्रत्स्नेहाय। कः गतिः। एष प्रऽस्मि।
चाणक्य –
वृषल! वृषल! अमात्यराक्षसेनेदानीमनुगृहीतोऽस्मि।
इस प्रकार नाटक के अन्त में प्रथम अंक जो मुक्ततां शिखां परामृशन्......कहकर जो बीज न्यास किया गया था

उसका निर्वहण नाटक के अन्त में इस श्लोक द्वारा किया गया है–

विना वाहनहस्तिभ्यां मुच्यतां सर्वबन्धनम्।
मया पूर्ण प्रतिज्ञेन भया केवलं बध्यते शिखा।। 7/17

नाटक के अन्त में भरतवाक्य का उल्लेख कर निर्वहण संधि के 'प्रशस्ति–शुभशंसनम्' नामक संध्यङ्ग का निर्वाह किया है।

इस भाँति मुद्राराक्षस नामक नाटक में नाट्यशास्त्र, साहित्य दर्पण, नाट्य दर्पण, प्रतापरूद्रीय इत्यादि नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में उल्लिखित समस्त शास्त्रीय तत्त्वों का परिपालन किया गया है। शास्त्रीय विशेषताओं की दृष्टि से भो दृश्यकाव्यों मे मुद्रराक्षस नाटक सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है।

घटनाओं की परस्पर अन्विति, क्रम और उनकी तार्किक परिणितियों का पूर्ण ध्यान रखा गया है। कथावस्तु की संरचना की दृष्टि से मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य में बेजोड़ है।

13.8 पारिभाषिक शब्दावली

कथावस्तु – कथावस्तु के दो भेद करते हुए दशरूपककार का कथन है।

''वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्ग प्रासंङ्गिक विदुः अधिकारिक मुख्य कथावस्तु है जैसे मुद्राराक्षस में चन्द्रगुप्त, चाणक्य तथा राक्षस की कथा मुख्य की अभूत कथावस्तु प्रासकि कहलाती है जैसे मुद्राराक्षस में भागुरायण, मलयकेतु, चन्दनदास इत्यादि की कथा।

सर्वश्राव्य – (प्रकाश) कथावस्तु सबके सुनने योग्य वह सर्वश्राव्य (प्रकाश) कहलाती है।

अश्राव्य अथवा स्वगत कथन –जो मञच पर स्थित अन्य पात्रों को सुनाने के लिए नहीं अपितु केवल दर्शकों को सूचित की जाती है वह अश्राव्य अथवा स्वगत कथन कहलाती है ।

नियत श्राव्य – जो कथा मञ्च पर स्थित कुछ ही पात्रों को सूचित करने के लिए होती है वह नियत श्राव्य कहलाती है। इसके भी दो भेद है जनान्तिक एवं अपवारित। आकाशभाषित भी एक अन्य भेद है।

अर्थ प्रकृति – नाटकीय संदर्भों में इन उद्देश्यो की प्राप्ति के निमित्त जो कार्य या उपाय किये जाते हैं उन्हे 'अर्थ प्रकृति' कहते हैं। अर्थप्रकृतयः प्रयोजन सिद्धिहेतवः। यहाँ अर्थ शब्द फल या प्रयोजन का वाचक है और प्रकृति है हेतु या कारण 'इस प्रकार फल की सिद्धि के उपाय ही अर्थप्रकृतियाँ है।

इसके पाँच प्रकार है बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य

अवस्था – अवस्था फल प्राप्ति के इच्छुक पात्रों द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्य की पाँच अवस्थायें होती है आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम ।

13.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मुद्राराक्षस नाटक की दो प्रमुख नाटकीय विशेषतायें लिखिये?
   ————————————————————————————————
2. मुद्राराक्षस नाटक में कितने प्रकार की प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है नामोल्लेख कीजिये?
   ————————————————————————————————
3. विशाखदत्त की शैली की प्रमुख दो विशेषताएँ बताइये?
   ————————————————————————————————
4. मुद्राराक्षस में प्रयुक्त छन्दों का नामोल्लेख करें?
   ————————————————————————————————
5. पाँच अर्थप्रकृतियों का नामोल्लेख करे?
   ————————————————————————————————
6. अवस्थापञ्चकम् बताइये?
   ————————————————————————————————
7. गर्भ संधि में प्रयुक्त अवस्था एवं अर्थप्रकृति को बताइये?
   ————————————————————————————————

8. संधिपञ्चक बताइये?

——————————————————————————————————————

9. मुद्राराक्षस में मुख संधि एवं विमर्श संधि किन अंको में प्रयुक्त है।

——————————————————————————————————————

10. निर्वहण संधि में प्रयुक्त अवस्था एवं अर्थ प्रकृति का नामोल्लेख कीजिये?

——————————————————————————————————————

विस्तृत प्रश्न

1. नाट्यशास्त्रीय संययानुसार कथावस्तु को विभाजित कीजिए?

   ....

   ....

2. मुद्राराक्षस नाटक की विशेषताओं पर संक्षिप्त लेख लिखे?

   ....

   ....

3. नाटक की शास्त्रीय विशेषताओं पर निबन्ध लिखे?

   ....

   ....

4. विशाखदत्त की भाषा शैली का संक्षिप्त विवेचन करें?

   ....

   ....

5. मुद्राराक्षस नाटक की शास्त्रीय विशेषताओं के निर्वहण पर अपने विचार प्रस्तुत करें?

   ....

   ....

अभ्यास के उत्तर

1. नाटक में स्त्री पात्रों एवं विदूषक का अभाव।
2. शौरसेनी, महाराष्ट्री एवं मागधी प्राकृत।
3. 'श्लेष' एवं 'भंग्यन्तरकथन'
4. स्रग्धरा एवं शार्दूलविक्रीडितम्।
5. बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी एवं कार्य।
6. आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम।
7. पताका अर्थ प्रकृति एवं प्राप्त्याशा अवस्था अर्थ प्रकृति।
8. मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श एवं निर्वहण संधि।
9. मुख संधि प्रथम अंक एवं निर्वहण संधि षष्ठ एवं सप्तम अंक में।
10. कार्य नामक अर्थप्रकृति एवं फलागम नामक अवस्था का संयोग ही निर्वहण संधि है।

विस्तृत प्रश्नों के उत्तर

1.	देखें	–	13.5
2.	देखें	–	13.4
3.	देखें	–	13.6
4.	देखें	–	13.2,3
5.	देखें	–	13.7

13.10 सारांश

इस प्रकार इस इकाई में हमने विशाखादत्त की भाषा शैली का अध्ययन किया । नाट्यशास्त्र के प्रमुख उपागमों जैसे वस्तु नेता रस इत्यादि का समायोजन विशाखादत्त ने किस प्रकार किया है इसका भी अवबोध हुआ है । मुद्राराक्षस में पंचसन्धि अवस्था इत्यादि का सम्यक प्रयोग विशाखादत्त ने किया है ।

13.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नाट्यशास्त्र,पं. बटुकनाथ शर्मा तथा बलदेव उपाध्याय चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2005.
2. साहित्य दर्पण,(विश्वनाथ कृत) आचार्य लोकमणि दाहाल, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, नईदिल्ली,२०१५.
3. नाट्य दर्पण,रामचन्द्र गुणचन्द्र, ओरियण्टल संस्कृत सीरीज, गायकवाड, १६२८.
4. काव्यानुशासनम्,हेमचन्द्र,निर्णयसागरप्रेस, बम्बई,१६३४.
5. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन वाराणसी, 1953.
6. संस्कृत कविदर्शन– भोलाशंकर व्यास– चौखम्बा विद्याभवन, 2003.
7. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
8. हिन्दी दशरूपकम्,डॉ. भोला शंकर व्यास, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2003.

इकाई – 14

मुद्राराक्षस नाटक, विशाखदत्त का परिचय, मुद्राराक्षस की प्रमुख व्याख्यायें (प्रथम से तीन अंक तक)

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस का संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह नाटक अन्य नाटकों से भिन्न है तथा पूर्णतः राजनीति पर आधारित है। इसमें नाटककार विशाखदत्त के परिचय के साथ–साथ नाटकीय तत्त्वों के आधार पर विशाखदत्त की सामान्य विशेषताओं, प्रमुख रस तथा प्रमुख पात्रों के चरित्र के विषय में भो ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

इस इकाई में विशाखदत्त के सामान्य परिचय, उसके स्थितिकाल तथा उनके द्वारा रचित मुद्राराक्षस नाटक की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन किया जायेगा। इस नाटक में चाणक्य का कूटनीति के आधार पर नंदवंश के विनाश के बाद राक्षस को वश में करना ही इसका प्रमुख ध्येय है। इसमें चाणक्य सफल होता है। अन्य नाटकों से भिन्न इस नाटक में न तो स्त्री पात्र है, न ही इसमें विदूषक पात्र है अतः प्रेम व कोमल भावों के लिए इसमें स्थान नहीं है। चाणक्य की राजनैतिक योजनायें व षडयन्त्रों पर आधारित ये नाटक अपने आप में मौलिक है। प्रमुख पात्रों के परिचय तथा महत्त्वपूर्ण व्याख्याओं का अध्ययन भो इस इकाई में कर सकेंगे।

14.2 विशाखदत्त का परिचय

मुद्राराक्षस नाटक के रचियता विशाखदत्त है विशाखदत्त का विस्तृत जीवन परिचय हमें प्राप्त नहीं होता। नाटक की प्रस्तावना में ''आज्ञापितोऽस्मि परिषदा यथाद्य त्वया

सामन्तवटेश्वदत्तपौत्रस्य महाराजभास्करदत्तसूनोः कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिरभिनवं मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यमिति'' इस कथन से प्रतीत होता है कि लेखक विशाखदत्त सामन्त बटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज भास्करदत्त के पुत्र है। इससे ज्ञात होता है कि विशाखदत्त का सम्बंध राजकुल से था । अतः मुद्राराक्षस नाटक उनकी राजनैतिक कुशलता का ही परिचायक है।

14.2.1 विशाखदत्त का समय

संस्कृत के अन्य कवियों के समान ही विशाखदत्त का भो निश्चित समय हमें प्राप्त नहीं होता। मुद्राराक्षस के भरत वाक्य में 'पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः' पार्थिवोऽवन्ति वर्मा, पार्थिवोदन्ति वर्मा और पार्थिवरन्ति वर्मा चार भिन्न–भिन्न पाठ मिलते है। कुछ विद्वानों ने पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः पाठ को सही मानते हुए इन्हें गुप्त साम्राज्य के चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालीन ;375–413 ई.द्ध और कालिदास का समकालीन स्वीकार किया है।

कुछ विद्वान् 'पार्थिवोऽवन्तिवर्मा' पाठ को प्रमाणिक मानते है। भारतीय इतिहास में दो अवन्ति वर्मा राजाओं का उल्लेख मिलता है। एक तो कन्नौज के मौखरि राजा अवन्ति वर्मा है जो सातवीं शती में हुए जिनके पुत्र ग्रह वर्मा का विवाह हर्षवर्धन की बहिन राज्य श्री से हुआ और दूसरे कश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा जिन्होंने नवम शताब्दी के मध्य ;855–883 ई. तकद्ध राज्य किया। कश्मीर नरेश अवन्ति वर्मा के साथ कवि के स्थितिकाल की संगति बैठाने के लिए या कोबी महोदय ने ज्योतिष के आधार पर बताया है कि मुद्राराक्षस में जिस चन्द्रग्रहण का वर्णन है, वह 2 दिसम्बर 860 ई. की घटना है। परन्तु प्रमाणों के अभाव में याकोबी महोदय के मत को विद्वान्–स्वीकार नहीं करते। तैलंग महोदय ने विशाखदत्त को मौखरि वंश के राजा अवन्ति वर्मा का समकालीन स्वीकार किया है। कन्नौज के इसी राजा अवन्ति वर्मा ने परवर्ती मौर्य राजाओं के साथ मिलकर हूणों के विरूद्ध युद्ध किये होंगे अतः तैलंग महोदय विशाखदत्त का समय सातवीं शतीं में या आठवीं शती के पूर्वार्द्ध में स्वीकारत है।

प्रो. ध्रुव के अनुसार कन्नौज के मौखरि राजा अवन्ति वर्मा ने थानेश्वर के राजा प्रभाकर वर्मा की सहायता से हूणों को 582 ई. में हराया था अतः विशाखदत्त का काल ईसा की छठी शताब्दी का उत्तरार्द्ध होना चाहिये।

अन्तः साक्ष्यों के आधार पर विशाखदत्त के समय बौद्ध धर्म की प्रतिष्ठा थी अतः मुद्राराक्षस बौद्ध धर्म के पतन से पूर्व की रचना है। 'दशरूपक' तथा 'सरस्वती कण्ठाभरण' में मुद्राराक्षस के अवतरण मिलते है। इन दोनों पुस्तकों का रचनाकाल ईसा की दसवीं या ग्यारहवीं सदी है। निस्सन्देह मुद्राराक्षस नवीं शती से पूर्व की रचना है क्योंकि दशम शती में मिलने वाले ग्रन्थों से पता चलता है कि उस समय मुद्राराक्षस नाटक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुका था। अतः प्रो. ध्रुव का यह मत अधिक संगत प्रतीत होता है कि विशाखदत्त ने छठीं शती के अन्तिम चरण में मुद्राराक्षस की रचना कन्नौज के मौखरि राजा अवन्ति वर्मा की हूणों पर विजय के उपलक्ष्य में की थी। प्रो. हरिदत्त शास्त्री भो विशाखदत्त का समय छठीं शती का उत्तरार्द्ध स्वीकार करते हैं।

14.2.2 विशाखदत्त की रचनायें

विशाखदत्त की जिन रचनाओं का उल्लेख मिलता है। वे इस प्रकार है–

देवी चन्द्रगुप्त – इस नाटक में चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा उसके अयोग्य भाई रामगुप्त को मारने तथा ध्रुव देवी को शकों से बचाने तथा उसके साथ विवाह करने का वर्णन है।

अभिसारिकावञ्चितक – भोज और अभिनवगुप्त ने इसे विशाखदेव के नाटक के रूप में उद्धृत किया है। इसमें वत्सराज और उसकी पत्नी पद्मावती के जीवन में घटित घटना का वर्णन है। यह नाटक भो अनुपलब्ध है।

राघवानन्द नाटक – यह भो प्राप्त नहीं है किंतु इसके उद्धरण सुभाषित ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।

मुद्राराक्षस – विशाखदत्त का प्रसिद्ध नाटक है तथा सात अंकों में विभाजित इस नाटक में चाणक्य की कुटिल राजनीति की चर्चा है। यह रचना आपके पाठ्यक्रम में है।

14.3 मुदाराक्षस नाटक का नामकरण

मुद्राराक्षस भाव प्रधान व रसप्रधान न होकर घटनाप्रधान है। नाटक के नामकरण का विवेचन करते समय जब मुद्रा शब्द पर दृष्टि डालते है तो संस्कृत में मुद्रा शब्द मुद्रण, सीमा तथा मौनावलम्बन अर्थ में प्रयुक्त होता है। अतः मुद्राराक्षस नाटक के नामकरण के सदभ में निम्न बिंदु सामने आते है–

1. इस नाटक की प्रमुख घटना है राक्षस का ग्रहण चाणक्य को अपने दूत द्वारा राक्षस की मुद्रा (मोहर) प्राप्त होती है। शंकटदास से एक कूटलेख लिखवाकर चाणक्य उसे मुद्रा से अंकित कर देता है तथा यही राक्षस की पराजय का मुख्य कारण बनती है। अतः 'मुद्रया गृहीतो राक्षसः मुद्राराक्षसः, तदधिकृतं नाटकं मुद्राराक्षसमिति।' यही मुद्राराक्षस के नामकरण का प्रमुख आधार है।

2. 'मुद्रा' का अर्थ परिस्थिति भो है। मुद्रा (परिस्थिति) के द्वारा राक्षस का ग्रहण वस्तुतः राक्षस परिस्थितियों से घिरा हुआ है अतः चाणक्य के सामने आत्मसमर्पण करने के अलावा उसके पास कोई रास्ता नहीं है।

3. डॉ. हरिदत्त शास्त्री ने 'मुद्रा–मौनमुद्रा राक्षसस्य यस्मिन्नाटके तत्' मुद्रा शब्द की इस व्युत्पत्ति को स्वीकार किया है। अपनी मुद्रा अंकित लेख देखने पर राक्षस का स्तब्ध, चकित और विवश हो जाना तथा चन्द्रगुप्त का मंत्रित्व पद स्वीकार कर लेना इससे ध्वनित होता है।

इस प्रकार 'मुद्राराक्षस' का नामकरण राक्षस की मुद्रा से अंकित लेख के द्वारा राक्षस को मंत्री पद के लिए विवश कर देने की घटना पर आधारित है। इस प्रकार नाटक का नामकरण नाटक की मुख्य घटना को ही केन्द्र में रखकर किया गया है।

14.4 मुद्राराक्षस नाटक की सामान्य विशेषताऐं –

विशाखदत्त की प्रसिद्ध नाट्य रचना मुद्राराक्षस है। यह सात अङ्कों का नाटक है तथा इसमें कूटनीतिक राजनीति को आधार बनाया गया है। संस्कृत में उपलब्ध समस्त नाटकों में यह अपनी तरह का एक अद्वितीय नाटक है। इसमें चाणक्य की कूटनीति से नन्दवंश को समाप्त करने का उसके उपरान्त राक्षस को वश में करने का वर्णन है।

इस विषय में चाणक्य ने स्पष्ट रूप से चर्चा की है कि ''अथवा अगृहीते राक्षसे किमुत्खातं नन्दवंशस्य किं वा स्थैर्यमुत्पादितं चन्द्रगुप्तलक्ष्म्याः'' अर्थात् राक्षस को बिना वश में किये नन्दवंश के विनाश व चन्द्रगुप्त की राज्य लक्ष्मी की स्थिरता का कोई महत्त्व नहीं है।

1. मुद्राराक्षस की प्रमुख विशेषता इसमें किसी नायिका का न होना है। नायिका के न होने से प्रेम आदि भावनाओं का सर्वथा अभाव है। प्रति हारी शोणोत्तरा, विजया तथा चन्दनदास की पत्नी, छोटे–छोटे स्त्री पात्र है जो मंच पर थोड़ी देर के लिए आते है।
2. नायिका के समान इस नाटक में विदूषक नामक पात्र का भो अभाव है। संस्कृत नाटकों में हंसाने के लिए 'विदूषक' का होना आवश्यक है तथा इसके बिना नाटक अधूरा है किंतु मुद्राराक्षस राजनीतिज्ञों की कूटनीति पर आधारित है, अतः इसमें प्रेम व हसी मजाक के लिए अवकाश ही नहीं है।
3. चन्द्रगुप्त के मंत्री और अर्थशास्त्र के रचयिता चाणक्य के गुणों पर आधारित इस नाटक में राजनीति षड्यन्त्र और युद्ध की चर्चा है। मुद्राराक्षस की लड़ाई चाणक्य

और राक्षस की वास्तविक लड़ाई नहीं वरन् उनकी मन्त्र शक्तियों की लड़ाई है। दो राजनीतिज्ञों का द्वन्द्व पूरे नाटक में दिखाई देता है।

4. नाटक की प्रमुख विशेषता अपने उद्देश्य में नाटक पूर्णतः सफल है। सभो पात्र अपने उद्देश्य के प्रति सजग है, सभो घटनाओं का मुख्य उद्देश्य राक्षस को वश में करना है। मुद्राराक्षस नाटक की कथावस्तु चाणक्य की कूटनीति के समान संश्लिष्ट है।

5. नाटक की एक प्रमुख विशेषता कि राजनीति पर आधारित होने के कारण इसमें नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है। किसी भो धर्म के प्रति कोई आस्था नहीं है तथा सदाचार का मापदण्ड योग्यता है। राजनीतिक प्रयोग की सफलता ही मुख्य उद्देश्य है।

6. नाटक की महत्त्वपूर्ण सफलता उसके पात्रों का चरित्र–चित्रण है। सभो पात्र जोड़े के रूप में आते है तथा दोनों पात्रों का विरोध और संघर्ष दिखाया गया है। कूटनीति में निपुण चाणक्य व राक्षस, विरोधी गुणों वाले चन्द्रगुप्त व मलयकेतु, भागुरायण और सिद्धार्थक इस तरह दो विरोधी गुणों वाले पात्र एक दूसरे के प्रति संघर्षरत है। राक्षस में नंद वंश के प्रति भक्ति उतनी ही दृढ़ है जितनी चाणक्य की नंदवंश के प्रति घृणा। इस चरित्र–चित्रण की दृष्टि से विशाखदत्त के पात्रों ने पूर्ण नाटकीयता का निर्वाह किया है।

7. संस्कृत का यह एक ऐसा नाटक है जिसमें दृश्यों का निर्माण किया गया है। दृश्यविधान व पात्र संरचना की दृष्टि से यह नाटक संस्कृत साहित्य का एक अद्वितीय नाटक है। पाश्चात्य समालोचकों के द्वारा नाटक के निर्धारित मानदण्डों पर यह एक ऐसा नाटक है जो पूर्ण रूप से खरा उतरता है।

14.5 मुद्राराक्षस नाटक का मुख्य रस

मुद्राराक्षस का अङ्गी या प्रमुख रस वीर रस है। श्रृंगार रस का अभाव होने के कारण तथा विषय के बौद्धिक स्तर के होने के कारण मुद्राराक्षस कुछ नीरस अवश्य है परन्तु इसमें काव्योचित उदात्तता का अभाव नहीं है। चाणक्य की राजनीति की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वीर–रस प्रधान होते हुए भो कहीं भो रक्त पात का दृश्य नहीं है। तलवारों की झनझनाहट भो नहीं है सिर्फ शब्दों के माध्यम से ही वीर रस का चित्र उपस्थित हो जाता है–

आस्वादितद्विरदशोणित शोणशोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।
जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्।। (1.8)

वह कौन व्यक्ति है, जो जँभाई के कारण खुले हुए मुख की उस दाड़ को बलपूर्वक उखाड़ लेना चाहता है जो हाथी के खून का स्वाद लेने के कारण लाल वर्ण की कांति से युक्त ठीक उसी प्रकार की लग रही है जिस प्रकार संध्या कालीन चन्द्रमा की लाल कान्ति प्रतीत होती है।

इस श्लोक में चाणक्य का उद्दाम उत्साह प्रतीत हो रहा है। मुद्राराक्षस का वीर रस वस्तुतः युद्ध स्थल का वीर रस नहीं है परन्तु बिना किसी स्वार्थ भावना के जन कल्याण की भावना से चाणक्य नूतन चन्द्रगुप्त साम्राज्य की स्थापना करता है अतः चाणक्य की उक्तियों से सर्वत्र वीर रस छलक रहा है।

चाणक्य ही नहीं राक्षस व मलयकेतु के वार्तालाप में भो वीर रस देखा जा सकता है। कहीं–कहीं सेनाओं की दौड़–धूप तथा युद्ध के वीर–रस के चित्र भो मिलते है–

गौडीनां लोध्रधूलीपरिमल वहलान् धूम्रयन्तः कपोलान्
क्लिश्नन्तः कृष्णिमानं भ्रमरकुलरुचः कुञ्चितस्यालकस्य।
पांशुस्तम्बा बलानां तुरगखरपुटक्षोदलब्धात्मलाभाः
शत्रूणामुत्तमाङ्गे गजमदमलिनच्छिन्नमूलाः पतन्तुः। (5/23)

''सेना के घोड़ों के खुरपुटों से चूर्णित रणभमि से उठ कर पुष्ट हुई धूल, गौड़ देश की स्त्रियों के लोध्रधूलि से सुगन्धित कपोलों को धूमिल बनाती हुई, उनके भाँरे जैसे काले, धुंधराले बालों को ओर अधिक मलिन बनाती हुई, हाथियों के मदजल से मलिन कीचड़ को उछालती हुई, शत्रुओं के मस्तक पर जाकर गिरे।''

इस प्रकार मुद्राराक्षस में स्थान–स्थान पर वीररस के चित्र गौरव गंभोर वातावरण को उत्पन्न करते है। श्रृंगार व हास्य रस का अभाव है। नाटक में भयानक व विभत्स रस भो नहीं है। सांतवें अंक में करूण रस अवश्य अभिव्यक्त हुआ है। चन्दनदास की पत्नी व पुत्र का मार्मिक रुदन करूण रस की सृष्टि करता है। वीर रस की प्रधानता के होते हुए भो विशाखदत्त की काव्यशैली सशक्त, गंभोर व प्रवाहमय है, उसमें परवर्ती कवियों की श्रमसाध्य कृत्रिम शली नहीं है।

14.6 मुद्राराक्षस नाट्क की नाट्यकला

मुद्राराक्षस नाटक में विशाखदत्त की नाट्यकला का श्रेष्ठ रूप दिखायी देता है। संस्कृत साहित्य में नाटक के लिए रूपक शब्द का प्रयोग हुआ है तथा रूपक के 10 भद स्वीकार किये गये हैं। विशाखदत्त रचित मुद्राराक्षस रूपक के 10 भदों में से 'नाटक' की कोटि में आता है। इस नाटक में नाट्य शास्त्र के नियमों का अक्षरशः पालन नहीं किया गया है अतः विशाखदत्त कृत यह नाटक अपनी नवीन व मौतिक विशेषताओं के साथ पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

नाटक का प्रमुख उद्देश्य राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाना है यहो नाटक का 'बीज' है। राक्षस की मुद्रा 'बिन्दु' का कार्य करती है। राक्षस द्वारा मन्त्रित्व स्वीकार करना है 'कार्य' है। नाटक की वस्तु योजना पूर्णतः सुगठित है। सभो घटनायें परस्पर सम्बद्ध है तथा छोटी से छोटी घटना तथा छोटे से छोटा पात्र मूल कथानक के विकास में ही सहायक है। इस नाटक में घटनाओं की संख्या अधिक है, बिना घटनाओं की जानकारी के नाटक को समझना कठिन है अतः नाटककार ने चाणक्य की उक्तियों के माध्यम से पाठक को आने वाली और हो चुकी अनेक घटनाओं की सूचना दी है। चाणक्य द्वारा नन्दवंश का नाश हो चुका है, पर्वतक की हत्या विषकन्या द्वारा करवा दी गयी है, यह सूचना कथावस्तु के स्वाभाविक विकास के लिए सहयोगी सिद्ध हुई है।

विशाखदत्त की नाट्यकला की प्रमुख विशेषता है कि पाठकों की उत्सुकता अन्त तक बनी रहती है। प्रारम्भ में लिखा गया लेख मैंने इस लेख के साथ जो प्रेषित किया है, स्वीकार किया जाये और अत्यन्त विश्वास पात्र सिद्धार्थक से मौखिक भो सुन लिया जाये। इसमें कौन सी वस्तु भजी जा रही है तथा सिद्धार्थक का मौखिक सन्देश क्या हो सकता है? इसे लेकर पञ्चम अंक तक उत्सुकता बनी रहती है अन्ततः चाणक्य अपनी योजनाओं में सफल होता है तथा राक्षस पराजित होता है। प्रथम अंक में चाणक्य द्वारा लिखा कूटनीतिक पत्र, उस पर मुद्रा अंकित करना, क्षपणक जीव सिद्धिका निर्वासन शकटदास का वध 'बीज' के विस्तार में सहायक घटनायें है। द्वितीय अंक में सपेरे के वेश में आने वाला विराध गुप्त राक्षस को उसकी योजनाओं की असफलता की सूचना देता है। तृतीय अंक में चाणक्य चन्द्रगुप्त का कृत्रिम क्लेश। चतुर्थ अंक में चाणक्य व चन्द्रगुप्त की लड़ाई सभो सूचना करभक द्वारा राक्षस को सुनाना। यह 'प्रकरी' नामक अर्थप्रकृति है। पांचवी अर्थप्रकृति 'कार्य'

है नाटक का मुख्य उद्देश्य कार्य है। चाणक्य मुद्राराक्षस नाटक में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करता है कि राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बना लेने का कार्य सिद्ध हो जाता है।

आचार्यों ने 'कार्य' की पाँच अवस्थायें मानी हैं। ये पाँच अवस्थायें प्रारम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति व फलागम है। प्रथम अंक में चाणक्य की फलप्राप्ति की उत्सुकता कथानक का प्रारम्भ है। फलप्राप्ति के लिए प्रयत्न करना और फलप्राप्ति की आशा बनने लगना प्राप्त्याशा कहलाती है। चन्द्रगुप्त व चाणक्य का कृत्रिम कलह, राक्षस के प्रति मलयकेतु का शंकित होना 'प्राप्त्याशा' के अन्तर्गत आते है। फल प्राप्ति के मार्ग में आने वाली बाधाओं का निराकरण 'नियताप्ति' है। इसमें फल प्राप्ति की निश्चितता हो जाती है। छठें अंक में राक्षस का वध स्थल की ओर जाना 'नियताप्ति' है क्योंकि निश्चित है कि अब राक्षस के पास कोई रास्ता नहीं वह चाणक्य के सम्मुख समर्पण करेगा। सातवें अंक में राक्षस का चन्द्रगुप्त का मंत्रीत्व पद संभालना 'फलागम' है। इस प्रकार पाँचों अवस्थाओं तथा नाट्य सन्धियों का पूर्णरूपेण निर्वाह मुद्राराक्षस में किया गया है।

इस नाटक में नायिका का पूर्ण अभाव है। नाटक रस प्रधान न होकर घटना प्रधान है तथापि 'वीररस' का परिपाक भली प्रकार हुआ है। इस प्रकार मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत में लिखे गये अन्य नाटकों से भिन्न तथा अद्वितीय नाटक है।

14.7 प्रथम अंक से तृतीय अंक तक की प्रमुख व्याख्यायें –

14.7.1 प्रथम अंक का सारांश तथा प्रमुख व्याख्यायें

प्रथम अंक में चाणक्य गर्जना करता है कि मेरे जीवित रहते चन्द्रगुप्त पर आक्रमण की बात कोई कैसे सोच सकता है? राक्षस को आधीन बनाकर चन्दगुप्त का मंत्री बनाना उसका लक्ष्य हैं निपुणक को राक्षस नामाङ्गित मुद्रा प्राप्त होती है तब वह शकटदास से पत्र लिखवाता और उसे राक्षस की मुद्रा से अंकित कर देता है। राजद्रोह के अपराध में शकटदास को फांसी देने लगे तब चाणक्य की योजना के अनुसार सिद्धार्थक शकटदास को वध–स्थल से छुड़ाकर भगा ले जाता है। राक्षस का परिवार चन्दनदास के यहाँ है यह जानकर चाणक्य बहुत प्रसन्न है क्योंकि अब राक्षस को वश में करना मुश्किल नहीं है। चाणक्य मन ही मन प्रसन्न है कि सब उसके संकेत पर अपने–अपने कार्य में लगे हुए हैं। इस प्रकार प्रथम अंक समाप्त होता है।

प्रथम अंक की व्याख्यायें –

व्याख्या –

आस्वादितद्विरदशोणितशोण शोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।
जृम्भाविदारित मुखस्य मुखात् स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्।। श्लोक 1/8

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त विरचित नाटक 'मुद्राराक्षसम्' से उद्धृत किया गया है।

संदर्भ – इस श्लोक में चाणक्य प्रस्तावना के पश्चात् मञ्च पर यह सिंहनाद करता है कि चाणक्य के रहते हुए ऐसा कौन है जो चन्द्रगुप्त को तिरस्कृत करना चाहता है?

अन्वय – कः जृम्भाविदारितमुखस्य हरेः मुखात् आस्वादित द्विरदशोणित शोणशोभां शाशलाञ्छनस्य सन्ध्यारूणां कलामिव स्फरन्ती ;हरेःद्ध दष्ट्रां परिभ्य हर्तुमिच्छति।

व्याख्या – कौन व्यक्ति ऐसा है जो जंभाई लेने के कारण खोले हुए मुख वाले शेर के मुँह से पान किये हुए हाथी के खून से लाल शोभा वाली चन्द्रमा की सन्ध्याकालीन लाल वर्ण की कला के समान चमकती हुई दाढ़ को निरादर करके अपहरण करना चाहता है। अर्थात् ऐसा कौन है जो सिंह के समान अत्यन्त क्रूर चाणक्य को तिरस्कृत कर मौर्य लक्ष्मी को छीनना चाहता है। अभिप्राय स्पष्ट है कि चाणक्य के रहते हुए मौर्यलक्ष्मी का कोई बाल भो

बांका नहीं कर सकता। चाणक्य के रहते चन्द्रगुप्त को जीतना राक्षस के लिए उतना ही कठिन है जितना शेर के मुख से दाढ़ निकालना।

विशेष –

1 द्विरद–द्वौ रदौ–दन्तौ अस्येति द्विरदः।

2. जृम्भाविदारितमुखस्य–यहाँ चाणक्य की जागरूकता व्यक्त होती है। शेर ने जंभाई ली है अभो उठा नहीं है।

3. द्रंष्ट्राम् – ष्ट्रन् प्रत्यय। मौर्यलक्ष्मी का कठिनता से उखाड़ना प्रतीत होता है।

4. इसमें 'संध्यारूणामिह' में उपमालंकार है तथा

5. वसन्ततिलका छंद है। (उक्ता वसन्ततिलका तमजा जगौः गः)

व्याख्या –

श्यामीकृत्याननेन्दूनरियुवतिदिशां संततैःशोकधूमैः
कामं मन्त्रिद्रुमेभ्योनयपवनहृतं मोहभस्म प्रकीर्य्य।
दग्ध्वा सम्भ्रान्तपौरद्विजगणरहितान् नंदवंशप्ररोहान्
दाह्याभावान्न खेदाज्ज्वलन इव वने शाम्यति क्रोध वह्निः।। श्लोक 1/11

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक अद्वितीय नाटककार विशाखदत्त रचित 'मुद्राराक्षसम्' के प्रथम अंक से उद्धृत किया गया है।

संदर्भ – यहाँ नन्दवंश को समाप्त कर चाणक्य ने यह सूचित किया है कि उसकी क्रोधाग्नि शांत हो रही है परन्तु राक्षस यदि मलयकेतु के साथ मिलकर उन पर आक्रमण करता है तो चाणक्य की क्रोध अग्नि फिर भड़क सकती है।

अन्वय – अरियुवतिदिशां आननेन्दून् संततैः शोकधूमैः श्यामीकृत्य, मन्त्रिद्रुमेभ्यः नयपवनहृतं कामं मोहभस्म प्रकीर्य। संभान्ततपौरद्विजगणरहितान् नंदवंशप्ररोहान् दग्ध्वा, वने ज्वलन इव क्रोधवहिनः दाह्यभावात् शाम्यति खेदात् न।

अर्थ – शत्रुओं की स्त्री रूपी दिशाओं के मुखरूपी चन्द्रमा को हमेशा शोकरूपी अग्नि से मलिन बनाकर मन्त्री रूपी वृक्षों के लिये नीतिरूपी वायु से उड़ाई जाती हुई मोह रूपी भस्म तथा मान्य नगर जनों रूपी पक्षियों से रहित नन्दरूपी वेणु के अंकुरों को जलाकर वन में लगने वाली दावाग्नि के समान मेरी क्रोध रूपी अग्नि अब शांत हो रही है क्योंकि अब जलाने योग्य अन्य सामग्री नहीं है।

कवि इसमें चाणक्य के सामर्थ्य की ओर संकेत कर रहे है कि शत्रुओं के विनाश होने पर तथा शत्रुस्त्रियों के रोने से सभो दिशायें मलिन हो गयी है। चाणक्य की नीति से नन्दवंश के सभो मंत्रीगण मोहित हो गये हैं अतः उसका विरोध करने में समर्थ नहीं है तथा जिस प्रकार आग लगने से वन में पक्षीगण उड़ जाते हैं उसी प्रकार सभो नागरिक गण छोड़कर चले गये है अतः किसी अन्य के विरोध में न होने के कारण अब चाणक्य का क्रोध शांत हो रहा है। यथा–

विशेष –

1. इस श्लोक में रूपक अलंकार का प्रयोग है। यथा– क्रोधवह्निः शोकधूमः, मंत्रिद्रुमेभ्यः मोहभस्य, संभान्त पौरद्विजगणरहितान् आदि।

2. श्यामीकृत्य अश्यामान् श्यामान् कृत्वा इति च्वि प्रत्यय

3. प्रकीर्य – प्र+कृ+ल्यप्

4. स्रग्धरा छंद है–भम्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।

व्याख्या –

समुत्खाता नन्दा नव हृदयरोगा इव भुवः
कृता मौर्य्ये लक्ष्मीः सरसि नलिनीव स्थिरपदा।
द्वयोः सारं तुल्यं द्वितयमभियुक्तेन मनसा
फलं कोप–प्रीत्योर्द्विषति च विभक्तं सुहृदि च।। 1/13

प्रसंग – यह श्लोक विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षसम् से उद्धृत किया गया है।

संदर्भ – इस श्लोक में चाणक्य कहते है कि नन्दवंश को जीत कर अब मैंने प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली है लेकिन फिर भो मैं चन्द्रगुप्त के मंत्रीपद को स्वीकार किये हुए हूँ।

अन्वय – भवः हृदयरोगा इव नव नन्दाः समुत्खाताः, सरसि नलिनीव मौर्ये लक्ष्मी स्थिरपदा कृता। कोपप्रीत्योः द्वयोः सारं द्वितयं फलम् अभियुक्तेन मनसा द्विषति च सुहृदि च तुल्यं विभक्तम्।

अर्थ – चाणक्य कहते है कि नन्दवंश को समाप्त करके मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी है क्योंकि मैंने पृथ्वी के हृदय में विद्यमान रोग के समान नौ नन्दों को समाप्त कर दिया है। सरोवर में कमलिनी के समान चन्द्रगुप्त में राज्यलक्ष्मी को स्थिर पैर वाली बना दिया है। क्रोध एवं प्रीति दोनों के सार को ;फल कोद्ध निग्रह व अनुग्रह तत्पर मन से मैंने दोनों को नन्द व चन्द्रगुप्त में समान रूप से बांट दिया है।

विशेष –

1. हृदयरोगाइव– उत्प्रेक्षालंकार है। नंद प्रजाओं में प्रिय नहीं था अतः उसे हृदयरोग के समान कहा हैं। नलिनीव में उपकालंकार है।
2. द्वितयम्–द्वौ अवयवौ यस्य इति द्वि+तयम्।
3. फलं कोपप्रीत्योः–कोप का फल शत्रु में तथा प्रीति का फल मित्र में युगपत् विभक्त कर दिया गया है।
4. शिखरणी छंद है (रसै रूद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।)

व्याख्या –

अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्याद्भक्तियुक्तेन कः
प्रज्ञाविक्रम शालिनोऽपि हिभवेत्किं भक्तिहीनात्फलम्।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च।। 1/15

प्रसंग – प्रथम श्लोक के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में भत्य अर्थात् सेवक के गुणों का वर्णन किया गया है।

अन्वय – भक्तियुक्तेन अप्राज्ञेन च कातरेण च कः गुणः स्यात्, प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपि भक्तिहीनात् हि फलं स्यात्। येषां प्रज्ञाविक्रमभक्तय समुदिताः गुणाः, ते भत्या नृपतेः भ्तये, इतरे सम्पत्सु चापत्सु च कलत्रम्।

अर्थ – चाणक्य कहते है कि भक्ति व सेवाभाव से युक्त किंतु बुद्धरहित व पराक्रम रहित सेवक से स्वामी का क्या लाभ? अर्थात कोई लाभ नहीं है। जिस सेवक में बुद्धि, पराक्रम व सेवाभाव तीनों, गुण हो वही सेवक राजा के कल्याण के लिए हो सकता है। इन तीनों गुणों से शून्य सेवक ऐश्वर्य के समय एवं विपत्ति के समय में स्त्रीतुल्य है।

विशेष – इसमें बुद्धि, पराक्रम व सेवा भाव सेवक के लिए तीनों गुण अनिवार्य हैं।

2. कलत्रम् – कलं दुर्बलं त्रायते कलत्रं कलयति वा। न वै पत्युःकामाय प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय। इसमें यह बताया गया है कि स्त्रियाँ स्वार्थसिद्धि के लिए पति की

सेवा करती हैं तथा पति को स्त्री की रक्षा व भरण पोषण करना पड़ता है। इससे स्वामी की किसी प्रकार की सिद्धि नहीं होती। यहाँ तत्कालीन नारी की स्थिति व भार रूपता का पता चलता हैं

3. शार्दूलविक्रीडितं छंद है ;सूर्याश्वैर्यदि मसजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितंद्ध

व्याख्या –

स्वच्छन्दमेकचरमुज्ज्वलदानशक्ति–
मुत्सेकिना मदबलेन विगाहमानम्।
बद्ध्या निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियाया–
मारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि।। 1/27

प्रसंग – प्रथम श्लोक के प्रसंगानुसार

संदर्भ – इसमें चाणक्य को अपनी बुद्धि पर पूर्ण विश्वास है। वह कहता है कि अपने बुद्धिबल से मैं मदजल से पूर्ण हाथी के समान राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री अवश्य बना दूंगा।

अन्वय – उज्जवलदानशक्तिम् एकचरं स्वच्छन्दम् उत्सेकिना मदजलेन विगाहमानम् आरण्यकं गजमिव बुद्धया निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियायां प्रगुणीकरोमि।

अर्थ – प्रस्तुत श्लोक के दो अर्थ है एक राक्षस के पक्ष में तथा दूसरा अर्थ हाथी के पक्ष में है। चाणक्य कहते है कि मैं प्रशस्त दान शक्ति वाले (गजपक्ष में) प्रशस्त मद को प्रवाहित करने की शक्ति वाले, आत्मीय जनों को छोड़कर अकेले विचरण करने वाले स्वच्छंद (गजपक्ष में) निरंकुश, दुरभिमानी दर्प के प्रभाव से (गजपक्ष में) मदजल के प्रभाव से हमारे अपकार की चेष्टा करने वाले, भमण करते हुए जंगली हाथी के समान (राक्षस को) अपनी बुद्धि से पकड़ कर चन्द्रगुप्त के लिए अमात्य कम में (गजपक्ष में) परिवहन करने के कम में लगाता हूँ।

विशेष –

1. स्वच्छंदम् निरंकुश। अपने पक्ष को छोड़कर विजातीय पक्ष में विचरण करने वाले, जिस पर कोई नियन्त्रण न हो।
2. उत्सेकिना उत्सेकः अस्ति अस्य। (दूरभिमानी)
3. विगाहमानम्–वि+गाह्+शानच्
4. श्लोक में राक्षस व गजपक्ष में अर्थ होने के कारण श्लेषमूलक उपमा है।
5. वसन्ततिलका छंद है। (उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगो गः)

14.7.2 द्वितीय अंक का सारांश तथा प्रमुख व्याख्यायें

द्वितीय अंक में राक्षस की कूटनीति का परिचय मिलता है। आहितुण्डिक का वास्तविक नाम विराधगुप्त है तथा वह सपेरे के वेष में राक्षस का गुप्तचर है। राक्षस उससे कुसुमपुर के वास्तविक समाचार जानते है। वह बताता है कि विषकन्या द्वारा पर्वतेश्वर की मृत्यु हो गयी है तथा कुमार मलयकेतु भो कुसुमपुर छोड़कर भाग गये है। चाणक्य ने पर्वतक के भाई वैरोचक को आधा राज्य दे देने का विश्वास दिला दिया है तथा नन्द भवन में प्रवेश करते समय आपके गुप्तचर दारूवर्मा ने वैरोचक को चन्द्रगुप्त समझते हुए मार दिया है। इसके पश्चात् सेना ने पत्थर मार–मार कर दारूवर्मा को मार दिया है। 'राक्षस द्वारा प्रयुक्त विषकन्या से पर्वतेश्वर मारा गया' इस अपराध की घोषणा करके चाणक्य ने क्षपणक जीवसिद्धि को नगर से बाहर निकलवा दिया है तथा शकटदास ने चन्द्रगुप्त को मारने के लिए दारूवर्मा को नियुक्त किया था इस अपराध के लिए शकटदास को प्राण दण्ड की सजा तथा उसकी पत्नी व पुत्र को जेल में डाल दिया है।

इसी बीच शकटदास को फाँसी से सिद्धार्थक बचा लाता है तथा राक्षस अपने मित्र की जान बचाने के कारण सिद्धार्थक को पारितोषिक देता है तथा अपनी मुद्रा उसके पास देखकर उसे आश्चर्य होता है। मुद्रा राक्षस को देकर सिद्धार्थक चाणक्य के भय से राक्षस के पास ही नौकरी कर लेता है। राक्षस अहितुण्डिक के वेश में विराधगुप्त को पुनः कुसुमपुर भज देता है कि चन्द्रगुप्त व चाणक्य के बीच विरोध भड़काने का प्रयत्न करना। राक्षस को विश्वास है कि चाणक्य व चन्द्रगुप्त के बीच भदनीति से वह पुनः राज्य प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार द्वितीय अंक राक्षस की नीति पर प्रकाश डालता है।

द्वितीय अंक की व्याख्यायें

व्याख्या –

नेदं विस्मृतभक्तिना न विषयव्यासङ्गमूढात्मना
प्राणप्रच्युतिभीरुणा न च मया नात्म प्रतिष्ठार्थिना।
अत्यथ परदास्यमेत्य निपुणं नीतौ मनो दीयते
देवः स्वर्गगतोऽपि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति।। श्लोक 2/5

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस नाटक के द्वितीय अंक से उद्धृत है।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस बताता है कि वह अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर राजनीति में मन नहीं लगा रहा परन्तु उसका उद्देश्य अपने स्वामी नन्द के शत्रुओं से बदला लेना है।

अन्वय – परदास्यमेव्य नीतौ मनः अत्यर्थं निपुणं दीयते, इदं विस्मृतभक्तिना न, विषयव्यासङ्गमूढात्मना न, प्राणच्युतिभोरूणा न, न च मया आत्मप्रतिष्ठार्धिना, स्वर्गगतः अपि देवः शात्रवधेन आराधितः स्यात् इति ;नीतौ मनोदीयतेद्ध।

अर्थ – दूसरों अर्थात् मलयकेतु की पराधीनता को स्वीकार करके राजनीति में मेरे मन लगाने से अभिप्राय यह नहीं है कि मैं स्वामिभक्ति भ्ल गया हूँ। विषयों की भोग की आसक्ति से भो मैं राजनीति में मन नहीं लगा रहा हूँ। न प्राणनाश के भय से और न ही अपनी प्रतिष्ठा की कामना से राजनीति में मन लगा रहा हूँ अपितु स्वर्ग गये हुए महाराज नन्द शत्रुओं के विनाश से सेवा किये जा सके अर्थात् मैं अपने स्वामी की मृत्यु का बदला शत्रुओं से ले सकूँ इसलिए राजनीति में मेरे द्वारा मन लगाया जा रहा है।

अभिप्राय स्पष्ट है राक्षस यह बताना चाहता है कि मैं अपने किसी निजी स्वार्थ धन, पद व प्राण मोह के कारण राजनीति में मन नहीं लगा रहा परन्तु नंदवंश के प्रति पूर्णसमर्पित राक्षस नंदवंश के विनाश का बदला लेना चाहता है। राक्षस की यह स्वामिभक्ति धन्य है।

विशेष – इसमें परिसंख्यालंकार व शार्दूलविक्रिडितम् छंद है।

व्याख्या –

कर्णेनेव विषानैङ्गकपुरूषव्यापादिनी रक्षिता
हन्तुं शक्तिरिवार्जुनं बलवती या चन्द्रगुप्तं मया।
सा विष्णोरिव विष्णुगुप्तहतकस्यात्यन्तिकश्रेयसे
हैडिम्बेयमिवेत्य पर्वतनृपं तद्वध्यतेवावधीत्।। श्लोक 2/15

प्रसंग – व्याख्या संख्या एक के अनुसार

संदर्भ – इस श्लोक में राक्षस चाणक्य द्वारा अपनी राजनैतिक योजनाओं के असफल कर देने पर चाणक्य की तुलना श्रीकृष्ण से करता है।

अर्थ – कण को जिस प्रकार इन्द्र ने एक शक्ति प्रदान की थी जो एक ही पुरूष को मार सकेगी। कण ने उस शक्ति को अर्जुन के मारने के लिए बचाकर रखा था, उसी प्रकार मैंने (राक्षस ने) एक विषकन्या रखी हुई थी परन्तु श्रीकृष्ण के समान चाणक्य ने अत्यधिक

कल्याण के लिए श्रीकृष्ण के द्वारा वध्य हिडिम्बापुत्र (घटोत्कच) के समान और चाणक्य द्वारा वध्य पर्वतेश्वर राजा को ही प्राप्त करके मार दिया।

विशेष – इस श्लोक में पात्रों का साम्य इस प्रकार है–

कण राक्षस, अर्जुन चन्द्रगुप्त। शक्ति विषागंमा ;दोनों एक पुरूष को मारने के बाद बलहीन हो जाती है। श्रीकृष्ण चाणक्य (दोनों राजनीतिज्ञ है) घटोत्कच–पर्वतक।

हैडिम्बेयम्–हिडिम्बा राक्षसी थी, भोमसेन से विवाह के बाद इससे घटोत्कच पुत्र पैदा हुआ था।

हिडिम्बाया–अपत्यं पुमान् इति हिडिम्बा + ठक् (प्रत्यय) उपमालंकार व शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति।। श्लोक 2/17

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अपने द्वारा प्रस्तुत योजनाओं की असफलता पर चिन्तित है। वह विराधगुप्त से कहता है कि बीज तो मैं बोता हूँ परन्तु फल चन्द्रगुप्त प्राप्त करता है। यह मेरा दुर्भाग्य है तथा शत्रुओं का सौभाग्य। तब विरोध गुप्त राक्षस से कहता है कि–

अन्वय – विघ्नमयेन नीचैः न खलु प्रारभ्यते, मध्याः प्रारम्य विघ्नविहता विरमन्ति। उत्तमगुणाः विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः प्रारब्धं न परित्यजन्ति।

अर्थ – विघ्नों के भय से नीच पुरूष कोई कार्य प्रारम्भ नहीं करते। मध्यम कोटि के पुरूष कार्य प्रारम्भ तो कर देते है परन्तु विघ्नों से नष्ट किये जाते हुए बीच में ही कार्य छोड़ देते है तथा उत्तम गुणों से युक्त पुरूष विघ्नों से बार–बार पीड़ित किये जाते हुए भो कार्य को अधूरा नहीं छोड़ते। इसमें उत्तम, मध्यम व निम्न कोटि के मनुष्यों की कार्य के प्रति प्रतिबद्धता को प्रकट करता है।

विशेष – यह श्लोक भतृहरि के नीति शतक में प्राप्त होता है। धनञ्जयकृत दशरूपक में भो यह भतृहरि के श्लोक के नाम से उद्धृत है। इसमें अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार व वसन्ततिलका छंद है।

व्याख्या

किं शेषस्य भरव्यथा वपुषि? क्ष्मां न क्षिपत्येष यत्।
किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेः। आस्ते न यन्निश्चलः।
किन्त्वङ्गीकृतमुत्सृजन्–कृपणवच्छ्लाध्यो जनो लज्जते
निर्वाहः प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धिगोत्रव्रतम्।। 2/18

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – अपनी नीति की असफलताओं पर दुःखी राक्षस जब विराधगुप्त से बात करता है तो विराधगप्त राक्षस का मनोबल बढ़ाते हुए कहता है किः–

अन्वय – शेषस्य वपुषि किम् भार व्यथा न यत् क्ष्मां एषः न क्षिपति वा किम् दिनपतेः परिश्रमः नास्ति यत् निश्चलः न आस्ते। किन्तु श्लाध्यो जनः अङ्गीकृतम् कृपणवत् उत्सृजन् लज्जते हि प्रतिपन्नवस्तुषु निर्व्यूढम् एतत् सताम् गोत्रव्रतम्।

अर्थ– शेषनाग के शरीर में पृथ्वी को धारण करने पर क्या पीड़ा नहीं होती परन्तु वह पृथ्वी को सिर से नहीं फेंक देता। अथवा क्या सूर्य को थकान का अनुभव नहीं होता परन्तु वह गति शून्य होकर बैठ नहीं जाता। प्रशंसनीय मनुष्य स्वीकार किये हुए कार्य को कायर मनुष्य के समान छोड़ता हआ लज्जित होता है क्योंकि स्वीकार किये हुए कार्य का निर्वाह करना, सज्जनों का कुलधर्म है।

विशेष –

1. शेषस्य – शेषनाग पाताल में रहने वाले सर्पों का राजा है। पौराणिक कथा है कि पृथ्वी शेषनाग के सिर पर टिकी है।
2. उत्सृजन् – उत्+सज्+शतृ।
3. निर्व्यूढम् – निर्+वि+वह्+क्त प्रत्यय।
4. समर्थन द्वारा बात प्रमाणित करने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार है।
5. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या –

मौर्यस्तेजसि सर्वभूतलभुजामाज्ञापको वर्तते
चाणक्योऽपि मदाश्रयादयमभूद्राजेति जातस्मयः।
राज्यप्राप्तिकृतार्थमेकमपरं तीणप्रतिज्ञार्णवं
सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तरा भेत्स्यति।। 2/23

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस चन्द्रगुप्त व चाणक्य के बीच फूट डालना चाहता है तथा उसे विश्वास है कि भदनीति से वह पुनः विजय प्राप्त कर लेगा।

अन्वय – मौर्यः सर्वभ्तलभजाम् आज्ञापकः तेजसि वर्तते चाणक्योऽपि मदाश्रयात् अयम् राजा अभ्त् इति जातस्मयः। राज्यप्राप्तिकृतार्थम् एकम् तीर्णप्रतिज्ञार्णवम् अपरम् (च) लब्धान्तरा कृतकृत्यता एव नियतम् सौहार्दात्भत्स्यति।

अर्थ– राक्षस सोचता है कि चन्द्रगुप्त सभो राजाओं को आज्ञा देने वाला तेजस्वी राजा है तथा चाणक्य भो यह (चन्द्रगुप्त) मेरे प्रयासों से राजा बना है, इस प्रकार उत्पन्न गर्व वाला है। राज्यप्राप्ति के कारण सफल एक को और प्रतिज्ञा रूपी समुद्र को पार कर लेने वाले दूसरे को अवसर पाकर निरपेक्षता निश्चित रूप से एक दूसरे के मैत्री भाव को समाप्त कर देगी।

विशेष –

1. सौहार्दात् – शोभनं ह्रदयमस्य इति सुह्रत् तस्य भावः इति सुह्रत्+अण्।
2. कृतकृत्यता – निरपेक्षता ;चन्द्रगुप्त व चाणक्य को अब एक दूसरे की आवश्यकता नहीं है क्योंकि दोनों अभोष्ट सिद्धि प्राप्त कर चुके है।
3. प्रतिज्ञार्णवं – उपमालंकार है

   कृतकृत्यता – यथासंख्यालंकार है।
4. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

14.7.3 तृतीय अंक का सारांश तथा प्रमुख व्याख्यायें

तृतीय अंक में चाणक्य व चन्द्रगुप्त का कृतक कलह ;बनावटी झगड़ाद्ध वर्णित है। प्रथम अंक में लिखे कूट पत्र के समान यह भो चाणक्य नीति का प्रमुख आधार है। यह अंक तीन दृश्यों में विभाजित है।

इस अंक में कञ्चुकी का प्रवेश होता है तथा वह सूचना देता ह कि कौमुदी महोत्सव मनाने की घोषणा कर दी गयी है तथा सारे नगर को सुसज्जित कर नागरिक उत्सव को उत्साहपूर्वक मनाये। परन्तु चाणक्य कौमुदी महोत्सव मनाने का निषेध कर देता है।

चाणक्य का आदेश है कि कौमुदी महोत्सव को आधार बनाकर ही चन्द्रगुप्त चाणक्य से कृतक कलह करके स्वतंत्र रुप से राज्य करें।

चन्द्रगुप्त चाणक्य के प्रतिबन्ध को स्वीकार करने से मना कर देता है तथा चाणक्य के त्याग पत्र को स्वीकार कर लेता है। चन्द्रगुप्त घोषणा करता है कि आज से चाणक्य को मंत्री पद से हटाकर चन्द्रगुप्त स्वयं ही राज्य करेगा। कृतक कलह इतना वास्तविक है कि इसे कञ्चुको भो सही समझ लेता है इसी के साथ तृतीय अंक समाप्त होता है।

तृतीय अंक की व्याख्यायें

व्याख्या

सुविश्रब्धैरङ्गै पधिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुयो यास्य गुरुणा।
धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो
मनस्वी दम्यत्वात्स्खलति च न दुःखं वहति च।। श्लोक 3/3

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस के तृतीय अंक से उद्धृत है।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में कौमुदी महोत्सव पर राज प्रसाद को सजाने का आदेश दिये जाने पर चन्द्रगुप्त के आने की सूचना मिलते ही चन्द्रगुप्त की प्रशंसा तथा उसकी वृषभ से तुलना की गयी है।

अन्वय – सुविश्रब्धैः अङ्गै विषमेषु पथिषु अपि अचलता धुर्येण अस्य गुरूणा या भवः गुरूरपि चिरम् ऊढा। ताम एव उच्चैः धुरम् नववयसि वोढुं व्यवसितः मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न च दुःखं वहति च।

अर्थ – अपने विश्वस्त अङ्गो (राजनीति के स्वामी, अमात्य, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, सेना और सुहृत् सात अंगों) के बल पर विषम पथ (राक्षस द्वारा अनेक विघ्नों से युक्त राजनीति के) पर अविचल भाव से चलते हुए उनके गुरूओं (पूर्वजों) में जिस राज्यभार को ढोया था, उसी भार को ढोने में उद्यत नई उम्र के कारण महामनस्वी स्खलित तो होता है, पर दुःखी नहीं होता है। दूसरी तरफ यह सभो विशेषण वृषभ पर घटित होते है कि नयी उम्र का बैल अपने सुपुष्ट ओ से विषम राह पर चलता हुआ भार ढोने से पृथक नहीं होता है।

विशेष – यह श्लोक द्वयर्थक (दो अर्थोवाला) है। इसमें निम्न शब्दों के चन्द्रगुप्त व बैल के अर्थ में दो अर्थ है–

1. सुविश्रब्धैः अङ्गै – विश्वस्त राजनीति के सात अंगों द्वारा सुपुष्ट अङ्गों द्वारा।
2. विषमेषु पथिषु – राजनीति के विषम पथ पर। उबड़ खाबड़ रास्ते पर।
3. धुर्येण – राज्यभार निर्वहण में समर्थ। भार ढोने में समर्थ।
4. स्खलति – कुछ दुःखी होता है। कुछ थकान महसूस करना।
5. व्यवसितः – वि+अव+सो+क्त प्रत्यय।
6. मनस्वी – प्रशस्त मनः अस्य इति मनस् विनि (प्रत्यय)
7. दम्यत्वात् – अधिक प्रौढ़ न होने से, जिसकी शिक्षा अभो समाप्त नहीं हुई है।
8. समासोक्ति अलंकार
9. शिखरणी छंद है।

व्याख्या

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता
परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थः क्षितिपतिः।
परार्थश्चेतस्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः।। श्लोक 3/4

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – इस श्लोक में स्वयं चन्द्रगुप्त मन ही मन राजा के कठोर उत्तरदायित्व के विषय में सोच रहा है कि राजा किसी भो कार्य के लिए स्वतन्त्र नहीं है उस पर प्रजा के हित का पूरा दायित्व है। वह अपने कत्तव्य के विषय में परतन्त्र है।

अन्वय – परार्थानुष्ठाने स्वार्थपरता नृपं रहयति परित्यक्तस्वार्थः नियतम–अयथार्थः क्षितिपतिः। चेत् परार्थः स्वार्थात् अभिमततरः हन्त परवान् परायत्तः पुरुषः प्रीतेः रसम् कथमिव वेत्ति।

अर्थ – दूसरों के प्रयोजन को सिद्ध करने में स्वार्थपरता अर्थात् स्वच्छंदता (विषयों का उपभोग) राजा को छोड़ देता है और जो अपने स्वार्थ को छोड़ देता है वह निश्चित रूप से अवास्तविक राजा है। जब परार्थ स्वार्थ से अधिक बलवान हो जाता तो निश्चित रूप से राजा परतन्त्र है और पराधीन मनुष्य प्रीति के रस का आनन्द कैसे पा सकता है।

विशेष –

1. राजा विषयभागों के लिए स्वतन्त्र नहीं है। राजा प्रजाहित के कार्य करने के लिए परातन्त्र है तथा पराधीन व्यक्ति सुखों का उपभोग कैसे कर सकता है?
2. काव्यलिङ्ग अलंकार है।
3. शिखरिणी छंद है।
4. नीचे की पंक्ति सूक्ति है। सच ही है पराधीन व्यक्ति सुखों का उपभोग नहीं कर सकता (पराधीन सपनेहु सुख नाहि)

व्याख्या

तीक्ष्णादुद्विजते मृदौ परिभवत्रासान्न संतिष्ठते
मूर्खं द्वेष्टि न गच्छति प्रणयितामत्यन्तविद्वत्स्वपि।
शूरेभ्योऽप्यधिकं बिभेत्युपहसत्येकान्तभीरून हो
श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्या भृशम्।। श्लोक 3/5

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – राज्यलक्ष्मी प्राप्त होने पर उसकी रक्षा करना कठिन है। राज्यलक्ष्मी की तुलना वेश्या से की गयी है, क्योंकि वेश्या के समान यह किसी भो राजा के पास बहुत ही प्रयत्न के उपरान्त ठहरती है।

अन्वय – तीक्ष्णात् उद्विजते, मृदौ परिभवत्रासात् न संतिष्ठते, मूर्खं द्वेष्टि, अत्यन्तविद्वत्स्वपि प्रणयितां न गच्छति। शूरेभ्योऽतयधिकं विभति, एकान्तभोरूनउपहसति, अहो लब्धप्रसंग वेशवनिता इव श्री भशं दुःखोपचर्या।

अर्थ – राज्यलक्ष्मी अत्यधिक दुःख से सेवा योग्य होती है। तीक्ष्ण दंड देने वाले राजा से उद्विग्न हो जाती है। कोमल चित्त वाले राजाओं के साथ तिरस्कार के भय से नहीं टिकती है। मूर्ख राजाओं ऐसे द्वेष करती है। अत्यन्त विद्वान् राजाओं से भो प्रेम नहीं करती। शूरवीरों से भय खाती है तथा एकान्त भोरू का उपहास करती है इस प्रकार यह राज्यलक्ष्मी प्रगल्भा वेश्या की तरह दुःखपूर्वक उपचार करने योग्य है।

विशेष –

1. सन्तिष्ठते – सम् उपसर्ग स्था धातु आत्मनेपदी।
2. अधिक कोमल व अतितीक्ष्ण दोनों प्रकार के राजाओं के पास लक्ष्मी नहीं ठहरती। इसके लिए राजाओं को विशेष रुप से प्रयत्न शील रहना पड़ता है।
3. एक ही लक्ष्मी की अनेक क्रियाये होने कारण दीपक अलंकार है।
4. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गे कथं चिदवतार्य तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गा शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम्। 3/9

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राजा चन्द्रगुप्त शरत्कालीन शोभा का वर्णन करता ह। इसके श्लोक में एक अर्थ शरत् ऋतु को लेकर गंगा के पक्ष में है तथा दूसरा अर्थ नायिका के पक्ष में है।

अन्वय – शरत् रतिकथा चतुरा दूती इव तथा कलुषिताम् तनू भवन्तीम् सर्वात्मना प्रसन्नाम् गङ्गाम्–बहुवल्लभस्य भर्तुः मार्गे कथंचित् अवतार्य सिन्धुपतिं नयति।

अर्थ – 1. गंगा पक्ष में – शरद् ऋतु प्रणय की कथाओं में चतुर दूती के समान वर्षाकाल में कीचड़ के कारण कलुषित तथा अब शरत्काल में कृश प्रवाह होती हुई पूर्णरुप से स्वच्छ जल वाली स्वच्छ गंगा को अनेक पत्नियों वाले समुद्र के मार्ग में येन केन प्रकारेण उतारकर सागर के पास जा रही ह।

2. नायिकापक्ष में – शरत् नामक स्त्री प्रणय की कथाओं में चतुर दूती के समान उस प्रकार से ईर्ष्या वाली, वियोग के कारण कृश होती हुई गङ्गा नाम की नायिका को प्रसन्न मुखी करके पत्नियों वाले स्वामी के अभिसरण मार्ग में करके सिंधु नामक पति के पास ले जा रही है।

विशेष –

1. अवतार्य – अव+तृ+णिच्+ल्यप्।
2. तनूभवन्तीम् – अतनुः तनुः भवन्ती इति तनु+च्वि+भ्+शतृ 'च्वौ च' से दीर्घ तनूभवन्तीम्
3. सिन्धुपतिम् – सिन्धूनां पति – समुद्र।

   सिन्धुनामा पति, तम् सिन्धुपतिम्।
4. श्लेषानुप्राणित उपमालंकार।
5. वसन्ततिलका छंद।

व्याख्या

उपलशकलमेतद्भेदकं गोमयानां
बटुभि रुपहृतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्।
शरणमपि समिद्भिः शुष्यमाणाभिराभि–
र्विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्।। 3/15

प्रसंग – प्रथम व्याख्या के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में कञ्चुकी सम्राट् चन्द्रगुप्त के मंत्री चाणक्य की कुटिया का वर्णन कर रहा है। राजनीति कुशल तथा अपने बुद्धिबल से नंदवंश को समाप्त कर देने वाले चाणक्य के स्वयं का घर कितना सादा है। अतः वह देखकर कहता है कि राजाधि राज के मंत्री की विभ्ति देखिये।

अन्वय – गोमयानां भदकम् एतत् उपलशकलम्, बहुभिः उपहृतानाम–बर्हिषाम् एतत् स्तूपम्। शुष्यमाणाभिः आभिः समिद्भिः विनमितपटलान्तं जीर्णकुड्यं शरणम् अपि दृश्यते।

अर्थ – उपलो को तोड़ने वाला यह पत्थर का टुकड़ा है, शिष्यों द्वारा लाये हुये कुशाओं का यह ढेर है। सूखती हुई समिधाओं से ढके हुए छत के प्रान्तभाग वाला जीर्ण दीवारों वाला घर भो दिखायी दे रहा है।

विशेष – इस श्लोक में चाणक्य से सादगीपूर्ण जीवन का चित्रण है।

1. गोमयानाम् – गो+मयट्
2. बटुभिरूपहृतानाम् से चाणक्य आचार्य होने का पता चलता है।
3. स्वाभावोक्ति अलंकार
4. मालिनीछंद है।

व्याख्या

आकाशं काशपुष्पच्छविमभिभवता भस्मना शुक्लयन्ती
शीतांशोरंशुजालैर्जलधरमलिनां क्लिश्नती कृत्तिमैभीम् ।
कापालीमुद्वहन्ती स्रजमिव धवलां कौमुदी मित्यपूर्वा
हासश्रीराजहंसा हरतु तनुरिव क्लेशमैशी शरद्वः।। 3/20

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में वैतालिक स्तुति पाठ करते है तथा इस श्लोक में दो अर्थ है एक शिव के पक्ष में तथा दूसरा शरद् ऋतु के पक्ष में। इसमें शिवस्तुति के माध्यम से चन्द्रगुप्त के क्लेश दूर करने की कामना की गयी है।

अन्वय – काशपुष्पच्छविम् अभिभवता भस्मना आकाशं शुक्लयन्ती शीतांशोः अंशुजालैः जलधरमलिनाम् ऐभों कृति क्लिश्नती। कौमुदीमिव धवलां कापालीं स्त्रजम् उद्वहन्ती हास्यश्रीराजहंसा अपूर्वा शरद् इव ऐशी तनुः वः क्लेशं हरतु।

अर्थ – 1. शिवजी के पक्ष में – काशपुष्प की कांति को तिरस्कृत करने वाली ;ध्वलद्ध भस्म से आकाश को शुभ करता हुआ, चन्द्रमा की किरणों के समूह से मेध के समान मलिन वर्ण वाली हाथी की खाल को विवर्ण बनाता हुआ चन्द्रिका के समान शुभ नरमुण्ड माला को धारण किया हुआ राजहंस की शोभा के समान अट्टहास की शोभा वाला अद्भत शरद् ऋतु के समान शिव सम्बधी शरीर आपके क्लेशों को दूर करें।

2. शरद् पक्ष में – भस्म को तिरस्कृत करने वाली का शपुष्प की कांति से आकाश को शुभ बनाती हुई, चन्द्रमा की किरणों के समूह से गजसम्बंधी चर्म के समान मेघों की मलिनता को नष्ट करती हुई, हास्य की शोभा के समान राजहंस वाली, लोकोत्तर गुणों से रमणीय शिवजी के शरीर के समान आपके क्लेश को दूर करें।

विशेष –

1. यह श्लोक द्वयर्थक है अतः एक अर्थ शिवजी के पक्ष में तथा दूसरा शरद् ऋतु के पक्ष में है।
2. शुक्लयन्ती – शुक्ल णिच्+शतृप्रत्यय

3. ऐभोकृतिम्–गजचर्म है जिसे ताण्डव नृत्य के समय शिवजी धारण करते है।

4. उपमालंकार है।

5. स्रग्धरा छंद है। म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनि यतियुता स्रधरा कीर्तितेयम्।

व्याख्या

गृध्रैराबद्धचक्रं वियति विचलितैर्दीर्धनिष्ठकम्पपक्षै –
धूमैर्ध्वस्तार्कभासां सघनमिव दिशां मण्डलं दर्शयन्तः।
नन्दैरानन्दयन्तः पितृवननिलयान्प्राणिनः पश्य चैता –
न्निर्वान्त्यद्यापि नैते स्रुतबहलवसावाहिनो हव्यवाहाः।। श्लोक 3/28

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में जब चन्द्रगुप्त में चाणक्य में कौमुदी महोत्सव का विरोध कर दिये जाने पर कृतक कलह हो रहा है तो चन्द्रगुप्त जब राक्षस की प्रशंसा करता है तो चाणक्य कहता है कि नन्दवश की समाप्ति करने वाला क्रोध अभो भो शांत नहीं हुआ है।

अन्वय – वियति आबचक्रं विचलितैः दीर्घनिष्कम्पपक्षैः गृध्रैः धूमैः ध्वस्तार्कभासां दिशा मण्डलं सघनं इव दर्शयन्तः। नन्दैः च पितृवननिलयान् एतान् प्राणिन आनन्दयन्तः एते स्रुतबहलवसावाहिनः हव्यवाहाः अद्यापि न निर्वान्ति पश्य।

अर्थ – आकाश में मण्डल बनाकर उड़ते हुए दीर्घ और निश्चल पंखों वाले गृद्ध रूपी धुयें से छिपा दिया है सूर्य का तेज जिसने ऐसी दिशाओं के समूह को मेघों से व्याप्त दिखलाती हुई और नन्दों से श्मशान में दिखायी देने वाली पिघली हुई अत्यधिक चर्बी को प्रवाहित करने वालो चिता की अग्नियाँ अभो शांत नहीं हुई है। अभिप्राय यह है कि चाणक्य बताना चाहते है कि अभो भो उनका क्रोध शांत नहीं हुआ है तथा वह किसी के विनाश की प्रतिज्ञा ले सकते है।

विशेष –

1. गृधेरेव धूमैः –रूपक अलंकार है। अग्नि प्रज्जवतित है अतः धूम के अभाव में गिद्धों का धूमरुप में वर्णन है।

2. हव्यवाहाः – हव्यं वहन्ति इति हव्य+वह+अ

3. स्रग्धरा छंद है।

14.8 पारिभाषिक शब्दावली

1. मुद्राराक्षसम् – मुद्रया परिगृहीतः राक्षसौऽत्रेति मुद्राराक्षसम्

2. नाटकम् – रुपक के दस भेदों में पहला भेद ।

3. नाद्यन्ते – नान्दी के अन्त में।

   नान्दी पाठ मंगलाचरण को कहते हैं। नाटक के प्रारम्भ में विघ्नविनाश के लिए नान्दी पाठ की परम्परा है।

4. सूत्रधार – नाटकीय कथा का प्रस्तुतकर्ता

   (सूत्रं धारयति इति सूत्रधारः)

5. प्रस्तावना – प्रस्तूयते उद्भाव्यते इतिवृत्तम् अनया इति।

   सूत्रधार स्वयं प्रस्तावना का निर्माण करता है।

   प्रस्तावना का उद्देश्य नाटककार और नाटक से परिचित कराना।

6. वृषल – इन्द्र सदृश प्रतापी या शूद्रपुत्र (सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य चन्द्रगुप्त के लिए प्रयुक्त करता है।)

7. नटी – सूत्रधार की पत्नी

8. मुद्रा – मोहर, मौनमुद्रा, अंगूठी

9. यमपट – ऐसा पट जिस पर शुभ व अशुभ कार्यों की सूचना के चित्र बने होते हैं ।

10. चरः – गुप्तचर

11. सैन्धवः – सिन्धु ;आधुनिक सिन्धद्ध 7वीं व 8 वीं शती का समृद्ध राज्य

12. कौलूतः – कुलूत का राजा ;आधुनिक कुल्लूद्ध

14. नेपथ्य – नटों के वेषविन्यास का स्थान

14. संगीतकम् – गीत वाद्य व नृत्य तीनों संगीतक कहलाते हैं ।

15. कञ्चुकी – अन्तःपुट में द्वार रक्षक

16. कौमुदीमहोत्सव – अश्विन व कार्तिक की पूर्णिमा की चाँदनी को कौमुदी कहते है।

17. आकाशे – आकाशभाषित है। एक नाटकीय सम्वाद प्रकार है। पात्रों की संख्या कम करने की विधि है।

18. जीर्णविषः – सपेरे का नाम। इस पर विष का कोई प्रभाव नहीं हो सकता।

19. नन्दानाम् – नन्द व उसके आठ पुत्र अतः बहुवचन का प्रयोग।

20. जनान्तिकम् – मंच पर बात करने का प्रकार जिससे बात अपने व्यक्ति के कान में कही जाये कि पास वाला न सुन पावे। इसमें पात्र दूसरे पात्र से 'त्रिपताकाकर' की मुद्रा बनाकर संवाद बोलता है।

14.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1. विशाखदत्त का समय स्वीकार किया गया है–

(अ) प्रथम शती का उत्तरार्द्ध (ब) छठीं शती का उत्तरार्द्ध

(स) चतुर्थ शती का पूर्वार्द्ध (द) पांचवी शती का उत्तरार्द्ध

प्र.2 मुद्राराक्षस में अंक है–

(अ) 7 (ब) 5

(स) 9 (द) 8

प्र.3 मुद्राराक्षस का नामकरण का आधार है–

उ. ————————————————————————————————————

प्र.4 विशाखदत्त की प्रमुख रचनायें लिखें –

उ. ————————————————————————————————————

बोध प्रश्न –

प्र.5 मुद्राराक्षस में नायिका है–

(अ) शकुन्तला (ब) वासवदत्ता

(स) कोई नहीं (द) पद्मावती

प्र.6 मुद्राराक्षस का मुख्य रस कौन सा है–

(अ) वीर (ब) अद्‌भुत

(स) भयानक (द) शृंगार

प्र.7 मुद्राराक्षस नाटक की सामान्य विशेषतायें लिखे।

————————————————————————————————

प्र.8 विशाखदत्त की नाट्यकला पर संक्षिप्त लेख लिखिये।

————————————————————————————————

प्र. 5 निम्न श्लोकों की व्याख्या कीजिये–

(अ) आस्वादितद्विरदशोणितशोण शोभां
सन्ध्यारुणामिव कलां शशलाञ्छनस्य।
जृम्भाविदारित मुखस्य मुखात् स्फुरन्तीं
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूय दंष्ट्राम्।। श्लोक 1/8

(ब) भर्तुस्तथा कलुषितां बहुवल्लभस्य
मार्गे कथं चिदवताय तनूभवन्तीम्।
सर्वात्मना रतिकथाचतुरेव दूती
गङ्गा शरन्नयति सिन्धुपतिं प्रसन्नाम्। 3/9

प्रश्नों के उत्तर –

1. ब
2. अ
3. देखिये भाग 14.3
4. देखिये भाग 14.2.2
5. स
6. अ
7. देखिये भाग 14.4
8. देखिये भाग 14.6
9. (अ) देखिये भाग 14.7.1
   (ब) देखिये भाग 14.7.3

14.10 सारांश

इस इकाई में आपने जाना कि महाकवि विशाखदत्त लिखित मुद्राराक्षस संस्कृत साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है इस नाटक में कवि ने चाणक्य कि कूटनीति के आधार पर नन्द वंश के विनाश और राक्षस को वश में करने का नाटकीय ढंग से वर्णन किया है। इसमें कवि विशाखदत्त के परिचय के साथ–साथ आपने उनके अन्तः साक्ष्यों व बाह्य साक्ष्यों के आधार पर उनका स्थितिकाल जो छटीं शती का उतरार्द्ध सि होता है, यह जाना। मुद्राराक्षस नाटक के नामकरण, उसकी सामान्य विशेषताओं तथा नाट्यकला की आधार पर इसकी समीक्षा की गई।

मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत के अन्य नाटकों से भिन्न है। इसमें नायिका का अभाव है तथा बीच–बीच में हंसाने वाले विदूषक पात्र भी नहीं है। अतः इस नाटक में शृंगार एवं कोमल भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। नाटक के बीच–बीच में दृश्य विधान इस नाटक की प्रमुख विशेषता है। इस नाटक का प्रमुख रस वीर रस है। इसमें चाणक्य की कुटिल चालों एवं विशुद्ध राजनीति का वर्णन है। इस इकाई में प्रथम से तृतीय अंक तक की मुख्य व्याख्यायें भी दी गई है। प्रमुख श्लोंको में कवि की गौरव गरिमापूर्ण वाणी एवं उनकी गंभीर शैली के दर्शन होते है। संपूर्ण संस्कृत साहित्य में यह अपनी तरह का एक अनूठा नाटक है।

14.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
2. मुद्राराक्षसम्, श्री निरञ्जन मिश्र, हंसा प्रकाशन जयपुर, 1999.
3. संस्कृत कविदर्शन डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा, वाराणसी, 2003.
4. संस्कृत महाकवि और काव्य, रामजी उपाध्याय, रामगोपाल मिश्र, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहबाद, 1958.
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1953.

इकाई – 15

मुद्राराक्षस नाटक (अङ्क 4 से अङ्क 7 तक) की प्रमुख व्याख्यायें

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप विशाखदत्तकृत नाटक 'मुद्राराक्षसम्' के विषय में जान सकेंगे। पिछली इकाई में आप 'मुद्राराक्षसम् नाटक के रचयिता विशाखदत्त का संक्षिप्त परिचय तथा उनके स्थिति काल, अङ्गी रस तथा प्रमुख पात्रों के चरित्र–चित्रण के साथ प्रथम, द्वितीय व तृतीय अंक का सारांश तथा महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें पढ़ चुके है। इस इकाई में चतुर्थ, अंक से लेकर सप्तम अंक तक का संक्षिप्त सारांश तथा महत्त्वपूर्ण व्याख्यायों के विषय में जान सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में चतुर्थ अंक से सप्तम अंक तक सभो अंकों के संक्षिप्त सारांश के माध्यम से आप 'मुद्राराक्षस' नाटक की कथावस्तु को जान सकेंगे तथा प्रमुख–प्रमुख श्लोकों की व्याख्याओं के साथ उनका प्रसंग, संदभ तथा अर्थ दिया गया हैं साथ ही विशेष टिप्पणी, व्याकरण संबंधी कुछ विशेष शब्दों के निर्देश तथा श्लोकों में अलंकार व छंदो का निर्देश किया गया है। अन्त में कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या भो दी गई है।

15.2 चतुर्थ अंक का सारांश, व्याख्यायें

चतुर्थ अंक में यह घोषणा होती है कि राक्षस शिरोवेदना से पीड़ित है तथा मलयकेतु राक्षस से मिलने जा रहा है। भागुरायण मलयकेतु के मन में यह बात बैठा देता है कि राक्षस चाणक्य के विरोध में है चन्द्रगुप्त के विरोध में नहीं है। शयनकक्ष में शकटदास, राक्षस व करभक बात कर रहे हैं और भागुरायण व मलयकेतु छिपकर उनकी बातचीत सुनते हैं ।

भागुरायण राक्षस की बात को अन्यथा करके मलयकेतु को समझता है। जब करभक ने राक्षस को सूचना दी कि चन्द्रगुप्त व चाणक्य में झगड़ा हो गया है तथा उसने चाणक्य को मंत्री पद से हटा दिया है। भागुरायण मलयकेतु को समझाता है कि राक्षस मंत्री पद की प्राप्ति चाहता है तथा चन्दनदासादि से छुटकारा। चाणक्य व चन्द्रगुप्त में लड़ाई से राक्षस

का मंत्रीपद सुरक्षित हो गया है। इस प्रकार भागुरायण ने मलयकेतु के ह्रदय में संदेह के बीज बो दिये है।

मलयकेतु राक्षस से पूछता है कि अब कितने दिनों तक युद्ध की प्रतीक्षा करनी होगी। राक्षस कहता है कि चन्द्रगुप्त व चाणक्य में अलगाव होने से युद्ध का अभो सही समय है क्योंकि चन्द्रगुप्त सचिवायत्तसिद्धि राजा है अतः वह बिना चाणक्य के हमारा विरोध नहीं कर सकता। इस प्रकार संदेह व युद्ध का उन्माद लिये मलयकेतु चला जाता है।

चतुर्थ अंक के महत्त्वपूर्ण व्याख्या स्थल

व्याख्या

मम विमृशतः कार्यारम्भे विधेरविधेयता–
मपि च कुटिलां कौटिल्यस्य प्रचिन्तयतो मतिम्।
अपि च विहिते मत्कृत्यानां निकाममुपग्रहे
कथमिदमिहेत्युन्निद्रस्य प्रयात्यनिशं निशा।। श्लोक 4/2

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त प्रणीत 'मुद्राराक्षस' के चतुर्थ अंक से उद्धृत है।

संदभ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस शिरोवेदना से पीड़ित है क्योंकि एक तो भाग्य विपरित होने से उसकी नीतियाँ असफल हो रही है, दूसरा चाणक्य की कुटिल नीतियों से वह परेशान है अतः वह मन ही मन कहता है कि–

अन्वय – कार्यारम्भ विधेः अविधेयतां विमृशतः, अपि च कौटिल्यस्य कुटिलां मति प्रचिन्तयतः। अपि च मत् कृत्यानां निकामम् उपग्रहे विहिते इह इदं कथम् इति उन्निद्रस्य मम अनिशं निशा प्रयाति।

अर्थ – कार्य के प्रारम्भ से लेकर भाग्य की प्रतिकूलता के विषय में सोचते हुए तथा चाणक्य की कुटिल बुद्धि के विषय में सोचते हुए तथा मेरे कार्यों का पूर्णतः निरोध हो जाने पर, कार्य की असफलता किस प्रकार हुई इस प्रकार जागते हुए निरन्तर रात्रि व्यतीत होती है।

विशेष –

1. विधेरविधेयताम् –वि+धा+यत् कमणि विधेयः संसार में सभो कुछ भाग्य के आधीन है।
2. उपग्रहे – निरोध।
3. अनिशम् अविद्यमाना निशा यस्मिन् कमणि तत् यथा तथा
4. समुच्चयालंकार है
5. हरिणी छंद है। नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणी मता।

व्याख्या

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयस्तस्य विस्तारमिच्छ–
न्बीजानां गर्भितानां फलमति गहनं गूढमुद्भेदयंश्च।
कुर्वन्बुद्ध्या विमर्श–प्रसृतमपि पुनः संहरन्कार्यजातं
कर्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा।। श्लोक 4/3

प्रसंग – प्रथम श्लोक के प्रसंगानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में नाटककार विशाखदत्त ने नाटक निर्माण में आने वाली कठिनाइयों का वर्णन किया है तथा श्लेषालंकार के माध्यम से राक्षस के द्वारा राजनीतिज्ञ के मन का दुःख वर्णित किया है।

अन्वय – आदौ तनुमपि कार्योपक्षेपं रचयन् तस्य विस्तारं इच्छन् गर्भितानां च बीजानाम् अतिगहनं गूढं फलं उद्भदयन्। बुद्ध्या विमर्शं कुर्वन्, प्रसृतम् अपि कार्यजातं पुनः संहरन्

नाटकानां कर्ता ;पक्षान्तरेद्ध वा आदौ तनुमपि कार्येपक्षेपं रचयन्, तस्य विस्तारम् इच्छन्, गर्भितानां च बीजानाम–अतिगहनं गूढं फलं उद्भदयन्, बुद्धया विमर्शं कुर्वन्, प्रसृतं अपि कार्यजातं पुनः संहरन् अस्मद्विधः वा इमं क्लेशम् अनुभवति।

अर्थ – नाटककार के पक्ष में – सर्वप्रथम मुखसन्धि में अपने कार्य का स्वल्प रूप स्थापित कर (प्रतिमुखसन्धि में) कार्य के विस्तार को चाहता हुआ, बीज के गभ में स्थित गूढ़ फल को (गभ सन्धि में) खोजता हुआ और उस बीज का (विमर्शसंधि में) अनुसंधान करता हुआ, यत्र तत्र फैले हुए कार्य समूह को (निर्वहण संधि में) प्रयोजन के लिए इकठ्ठा करता हुआ नाटकों का निर्माण करने वाला ।

2. राजनीतिकार के पक्ष में – प्रारम्भ में थोड़े भो अभोष्ट कार्य के उपाय (सामादि) को करता हुआ (बीच बीच में) इस प्रारम्भ किये गये कार्य के विस्तार को चाहता हुआ, गुप्त अत्यन्त गहन साध्य को प्रकट करता हुआ बुद्धि के द्वारा विस्तार करता हुआ, विस्तार से फैले कार्यों को पुनः समेटता हुआ राजनीतिज्ञ रात्रि जागरण के दुःख को अनुभव करता है।

विशेष –

1. इस श्लोक में श्लेष द्वारा एक अर्थ में नाटककार द्वारा संधि नियमों के आधार पर नाटक का निर्माण तथा दूसरे अर्थ में राजनीतिज्ञ द्वारा सामादि उपायों से राजनीति के कार्यव्यापार की चर्चा है।
2. कार्योपक्षेपम् – कार्य का उपक्षेप। चाणक्य का कार्योपक्षेप प्रथम अंक में तथा राक्षस का कार्योपक्षेप द्वितीय अंक में किया गया है।
3. इस में बीज–बिंदु–पताका–प्रकरी और कार्य पाँच अर्थप्रकृतियों तथा प्रारम्भ – प्रयत्न आप्त्याशा नियताप्ति व फलागम इन पाँच अवस्थाओं के संयोग से मुख प्रतिमुख, गभ,अविमर्श, निर्वहण पाँच संधियों का वर्णन है।
4. श्लेष व दीपक अलंकार है।
5. स्रग्धरा छंद है।

व्याख्या

राज्ञां चूड़ामणीन्दु द्युतिखचितशिखे मूर्ध्नि विन्यस्तपादः
स्वैरेवोत्पाद्यमानं किमिति विषहते मौर्य आज्ञाविघातम्।
कौटिल्यः कोपनोऽपि स्वयमभिचरणज्ञातदुःखप्रतिज्ञो
दैवात्तीर्णप्रतिज्ञः पुनरपि न करोत्यायतिग्लानिभीतः।। 4/12

प्रसंग – प्रथम श्लोक के प्रसंगानुसार

संदभ – चतुर्थ अंक में शकटदास, मलयकेतु, भागुरायण व राक्षस का परस्पर वार्तालाप हो रहा है तथ शकटदास इस श्लोक में कहता है कि चन्द्रगुप्त अपनी आज्ञा का उल्लंघन करने वाले को सहन नहीं करेगा तथा चाणक्य पुनः प्रतिज्ञा नहीं करेगा।

अन्वय – चूड़ामणीन्दुद्युतिखचितशिखे राज्ञां मूर्ध्नि विन्यस्तपादः मौर्यः स्वैः एव उत्पाद्यमानम् आज्ञाविघातं किमिति विषहते। स्वयम् अभिचरणज्ञातदुःखप्रतिज्ञः दैवात् तीर्णप्रतिज्ञः कोपनः अपि कौटिल्यः आयतिग्लानिभोतः पुनः अपि न करोति।

अर्थ – राजाओं की चन्द्रोपम चूड़ामणियों की कांति से परिपूर्ण शिखा वाले शिर पर पैर रखने वाला वह चन्द्रगुप्त मौर्य अपने लोगों द्वारा आज्ञा के उल्लंघन को कैसे सहन कर सकता है? दूसरी और क्रोधी चाणक्य जिसने प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए महान कष्ट देखा है, संयोग वश जिसकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी है, भविष्य में प्रतिज्ञा के पूर्ण न होने के भय से पुनः प्रतिज्ञा नहीं कर सकता।

विशेष – अभिचरण – शत्रु के विनाश के लिए मंत्रों तंत्रों का प्रयोग करना।

प्रस्तुत श्लोक में स्रधरा छंद है।

व्याख्या

आविर्भूतानुरागाः क्षणमुदयगिरेरुज्जिहानस्य भानोः
पर्णच्छायैः पुरस्तादुपवनतरवो दूरपाश्वेव गत्वा।
एते तस्मिन्निवृत्ताः पुनरपरगिरिप्रान्तपर्यस्तबिम्बे,
प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः। श्लोक 4/21

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अस्त होते हुए सूर्य को देखकर कहता है कि अनुचर अभ्युदय वाले स्वामी का तो अनुगमन करता है परन्तु अवनति होने पर उसे छोड़ देता है।

अन्वय – क्षणम् आविभ्तानुरागाः एते उपवनतरवः उदयगिरेः उज्जिहानस्य भानोः पुरस्तात् पर्णच्छायैः आशु एव दूरं गत्वा पुनः अपरगिरि प्रान्तपर्यस्तबिम्बे तस्मिन् निवृत्ताः, प्रायः सेवामानाः भत्या प्रचलितविभवं स्वामिनं त्यजन्ति।

अर्थ – क्षण भर के लिए उत्पन्न अनुराग वाले आश्रम के वृक्ष उदयाचल से उदय होते हुए सूर्य के सम्मुख पल्लवों की छाया से शीघ्र ही दूर जाकर पुनः अस्ताचल के प्रान्त भाग पर (सूर्य) बिम्ब के लटकते हुए हो लौट जाते हैं। प्रायः अपने सेवनीय स्वामी के भो वैभवहीन हो जाने पर सेवक उन्हें छोड़ दिया करते हैं।

विशेष –

1. उज्जिहानस्य उद्+हा+शानच् (प्रत्यय)
2. उत्प्रेक्षालंकार है।
3. अन्तिमपंक्ति में विशेष का सामान्य द्वारा समर्थन में अर्थान्तरन्यास अलंकार हैं
4. स्रग्धरा छंद है।

15.3 पञ्चम अंक का सारांश, व्याख्यायें

पञ्चम अंक में राक्षस व मलयकेतु के बीच फूट के जो बीज बोये गये थे वह फूट इस अंक में पूर्ण हो गयी है। चाणक्य की नीति को प्रकट रूप से उद्देश्य की ओर ले जाने वाले एक अंक को 6 भागों में विभक्त किया गया है।

इसमें प्रवेशक से पूर्व व भविष्य की सभो सूचनायें प्राप्त होती है। राक्षस व मलयकेतु में फूट डल चुकी है तथा मलयकेतु को विश्वास हो गया है उसके पिता पर्वतेश्वर को राक्षस ने विषकन्या से मरवाया है। कुसुमपुर के पास शिविर में सिद्धार्थक बिना आज्ञापत्र के है, उसके पास एक पत्र है, यह वही पत्र है जो चाणक्य ने प्रथम अङ्क में शकटदास से लिखवाया था और राक्षस की मुद्रा से मुद्रित कर दिया था। लेख के विषय में न बताने पर पीटे जाने पर सिद्धार्थक की बगल से आभ्षणों की पेटी गिर जाती है। पेटी में वह आभ्षण है जो मलयकेतु ने कञ्चुकी के हाथ राक्षस के पास भजे थे। सिद्धार्थक बताता है कि यह पत्र लेकर राक्षस ने उसे चन्द्रगुप्त के पास भजा है। मलयकेतु राक्षस को विश्वासघाती समझता है तथा राक्षस के किसी स्पष्टी करण को मानता। राक्षस समझ जाता है कि चाणक्य ने उसके प्रति बहुत बड़ा षड्यन्त्र रचा है तथा मलयकेतु यह निष्कष निकालता है कि राक्षस चन्द्रगुप्त से मिलकर उसके प्रति षड्यन्त्र रच रहा है। भागुरायण मलयकेतु को कुसुमपुर पर आक्रमण करने का सुझाव देता है तथा राक्षस पूर्णतः एकाकी व निराश हो जाता है आर अन्त में अपने एक मात्र प्रिय मित्र चन्दनदास को मृत्यु के मुख से छुड़ाने की योजना बनाता है।

पञ्चम अंक की महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें

व्याख्या

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना
मुहुः सम्पूणाङ्गी मुहुरतिकृशा कार्यवशतः।
मुहुर्नश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफले–
त्यहो चित्राकारा नियतिरिव नीतिर्नयविदः।।5/3

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस के पञ्चम अंक से लिया गया है।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस व मलयकेतु के मध्य फूट पड़ जाने के बाद भागुरायण कौटिल्य की नीति की प्रशंसा करते हुए कहता है कि चाणक्य की नीति की विचित्रता आश्चर्य जनक है।

अन्वय – मुहुः लक्ष्योद्भदा, मुहुः अधिगमाभावगहना मुहुः कार्यवशतः अतिकृशा मुहुः नश्यद्बीजा मुहुः सम्पूणाङ्गी मुहुरपि बहुप्रापितफला नयविदः नीतिः नियतिरिव चित्राकारा इत्यहो।

अर्थ – नितिज्ञ चाणक्य कि नीति नियति के समान अति विचित्र है। कभो लगता है कि इसका लक्ष्य स्पष्ट है, कभो वास्तविक लक्ष्य का ज्ञान न होने के कारण अत्यधिक गूढ़, कभो कार्यवशात् अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है। कभो सम्पूर्ण अंगों वाली कभो मूल लक्ष्य से भष्ट हो गयी, कभो सम्पूर्ण परिणामों को सफलतापूर्वक प्राप्त कराने वाली चाणक्य की नीति सचमुच नियति के समान विचित्र है।

विशेष – इस श्लोक में नाटककार विशाखदत्त ने नाट्यशास्त्र की पाँच सन्धियों का वर्णन किया है यथा–

1. (1) मुहुर्लक्ष्योद्भदा – मुखसन्धि (2) मुहुरधिगभाभावगहना – मुहुरतिकृशा कालवशात् –
   प्रतिमुखसन्धि, (3) मुहूर्तनश्यद्बीजा–गभसन्धि, (4) मुहु सम्पूणाङ्गी–विमर्शसंधि (5) मुहुरपि बहुप्रापित काले –निर्वहण संधि।
2. अप्रस्तुत प्रशंसालंकार
3. शार्दूलविक्रीडितम् छंद ।

व्याख्या

भक्त्या नन्दकुलानुरागदृढया नन्दान्वयालम्बिना
किं चाणक्यनिराकृतेनकृतिना मौर्येण संधास्यते।
स्थैर्यं भक्तिगुणस्य वाधिगणयन्किं सत्यसन्धो भवे–
दित्यारूढकुलालचक्रमिव मे चेतश्चिरं भ्राम्यति।। 5/5

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में मलयकेतु को राक्षस के प्रति सन्देह हो जाता है तथा राक्षस के प्रति संकल्प विकल्प से युक्त उसकी बुद्धि कुछ भो निर्णय करवाने में असमर्थ है।

अन्वय – नन्दान्वयालम्बिना चाणक्यनिराकृतेन कृतिना मौर्येण नन्दकुलानुरागदृढया भवत्या किं
सन्धास्यते। किं वा भक्तिगुणस्य स्थैर्यम् अधिगणयन् सत्यसन्धो भवेत् इति आरूढ कुलालचक्रम् इव मे चेतः चिरं भाम्यति।

अर्थ – नन्दवंश में अनुराग युक्त दृढ़ भक्ति के कारण नंद वंश से सम्बंध रखने वाले, चाणक्य को अपने सचिव पद से हटाने वाले कृतज्ञ उस चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ संधि कर लेगा या मेरी भक्ति की स्थिरता को देखकर अपने वचन (चन्द्रगुप्त के स्थान पर मुझे राजा

बनाना) को सिद्ध करेगा। यह सोचकर मेरा चित्त कुलाल के चक्के पर चढे हुए पात्र की तरह चक्कर लगा रहा है।

विशेष – आरूढकुलचकम् इव में उत्प्रेक्षालंकार । शार्दूलविक्रीडितम् छंद ।

व्याख्या

साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं बिभ्रत् सपक्षे स्थितिं
व्यावृत्तञ्च विपक्षतो भवति यत्, तत् साधनं सिद्धये।
यत् साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षे विरुद्धञ्च यत्
तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात् स्वामिनो निग्रहः।। श्लोक 5/0

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदभ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अपनी सेना के विषय में सोच रहा है कि हमारी सेना में शत्रु के गुप्तचर आदि भरे है अतः हमारा पराभव निश्चित है। इस श्लोक के दो अर्थ है एक वादी पक्ष में दूसरा स्वामी के पक्ष में।

अन्वय – यत् साध्ये निश्चितम् अन्वयेन घटितम्, सपक्षे स्थिति विभत्, विपक्षतः च व्यावृत्तं भवतितत्
साधनं सिद्धये। यत् स्वयमेव साध्यम् उभयोः तुल्यम्, यत् च पक्षे विरूद्ध तस्य अङ्गीकरणेन स्वामिनः इव वादिनः निग्रहः स्यात्।

अर्थ – 1. (वादी पक्ष में) जो साध्य (वह्नि में) निश्चित रुप से है। अन्वय व्याप्ति से विशिष्ट है। सपक्ष (महानसादि) में अपनी स्थिति रखता है। विपक्ष (जलाशय आदि) से बिल्कुल विपरीत होता है वह
साधन (घूमादि) अनुमान की सिद्धि में सहायक होता है। जो साधन स्वयं साध्य हो, सपक्ष और विपक्ष में समान रूप से रहता हो, पक्ष में विरुद्ध हो ऐसे साधन (हेत्वाभास) का ग्रहण करने से स्वामी की तरह वादी का पराभव निश्चित है।

2. स्वामी पक्ष में – वह सेना विजय में सहायक होती है, जो शत्रु को जीतने के कार्य में तत्पर हो, अपने पक्ष के लोगों के साथ विश्वास रखती हो, अपने पक्ष व शत्रु पक्ष के लोगों के साथ समान व्यवहार रखती हो। अपने स्वामी से विरोध रखती हो, ऐसी सेना को साथ रखने वाले स्वामी की वादी की तरह पराजय निश्चित है।

विशेष – उपर्युक्त श्लोक में राक्षस ने अनुमान प्रमाण को सिद्ध करते हुए सेना की सफलता की चर्चा की है। यह नाटककार विशाखदत्त को न्याय शास्त्र सम्बंधी ज्ञान को प्रकट करता है। यहाँ सभो शब्द द्वयर्थक है–

1. साध्ये–पक्ष में, शत्रुओं पर विजय प्राप्ति के कम में साध् धातु + ण्यत् प्रत्यय।
2. अन्वयेन – अन्वय–व्याप्ति पक्ष में, कुल परम्परा से।

   अनु+इ+अत्र अन्वय
3. सपक्षे – सपक्ष में (महानसादि में) राजा के पक्ष में।
4. विपक्षतः – विपक्ष से (जलाशय से), शत्रु से
5. साधनम् – हेतु, सेना।
6. सिद्धये–सिद्धि के लिए (अनुमिति के लिए) कार्य की सिद्धि के लिए
7. इसमें श्लेषानुप्राणित उपमा है।
8. शार्दूलविक्रीडितम् छन्द है।

व्याख्या

किं गच्छामि तपोवनं न तपसा शाम्येत्सवैरं मनः
किं भर्तॄननुयामि जीवति रिपौ स्त्रीणामियं योग्यता।
किं वा खड्गसखः पताम्यरिबले नैतच्च युक्तं भवे–
त्वेतश्चन्दनदासमोक्षरभसं रुन्ध्यात्कृतघ्नं न चेत्।। श्लोक, 5/24

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – इस श्लोक में राक्षस अपनी कूटनीति के विफल हो जाने तथा सभो मित्रों को मृत्यु को प्राप्त हो जाने से बहुत दुःखी है अतः राक्षस कहता है कि –

अन्वय – किं तपोवनं गच्छामि, तपसा सवैरं मनः न शाम्मेत् रिपौ जीवति किं भर्तॄन् अनुयामि, इयं स्त्रीणां योग्यता। वा खड्गसखः किम् अरिबले पतामि, एतत् च युक्तं न, चन्दनदास मोक्षरभसंचेतः रुन्ध्यात्, चेत् न कृतध्नं भवेत्।

अर्थ – क्या मैं तपोवन चला जाऊँ? तपस्या से वैरयुक्त मन शान्त नहीं होगा। शत्रु के जीवित रहने पर क्या स्वामी (नन्द) का अनुसरण करूँ? यह स्त्रियों की योग्यता है अर्थात् स्त्रियाँ ही पति का अनुसरण करती है। अथवा तलवार है सहायक जिसकी ऐसा मैं शत्रु सेना पर गिरूँ, यह ठीक नहीं है। चन्दनदास को छुड़ाने के लिए शीघ्रता वाला मेरा मन रोक रहा है यदि न रोके तो कृतध्न होगा। इस प्रकार इतने विकल्पों के बाद अपने प्रिय मित्र चन्दनदास को छुड़ाना ही राक्षस का एक मात्र कत्तव्य कम शेष रहा है।

विशेष :

1. इसमें राक्षस की निराश मनः स्थिति का वर्णन है।
2. प्रस्तुत श्लोक में काव्यलिंग अलंकार है।
3. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

15.4 षष्ठ अंक का सारांश

इस अंक में चाणक्य ने शत्रु सेना पर अधिकार कर लिया है। मलयकेतु ने राक्षस को शिविर से निकाल दिया है। राक्षस पुनः पाटलिपुत्र आ गया है। इस अंक में एक पुरूष फाँसी लगाने जा रहा है वह बताता है कि उसका मित्र विष्णुदास जल कर आत्म हत्या करने जा रहा है क्योंकि उसके मित्र चन्दनदास को फाँसी दी जा रही है। चन्दनदास को फाँसी अपने मित्र राक्षस के परिवार को छिपाने के लिए दी जा रही है। वह शस्त्र लेकर जल्लादों के सामने जाने के लिए राक्षस को मन करता क्योंकि शस्त्र देखकर जल्लाद चन्दनदास को शीघ्र मौत के घाट उतार देगे। राक्षस चाणक्य की कूटनीति के विषय में सोचता है कि शकटदास का उसके पास आना शत्रु की किस योजना का अङ्ग है? उसने मेरे विरोध में कूटपत्र क्यों लिखा? इसी उहापोह में राक्षस को कोई रास्ता नज़र नहीं आता और वह अपने प्रिय मित्र चन्दनदास को बचाने के लिए आत्मसमर्पण के लिए तैयार हो जाता है। इस प्रकार छठा अंक समाप्त हो जाता है।

षष्ठ अंक की महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें

व्याख्या

यो नष्टानपि बीजनाशमधुना शुश्रूषते स्वामिन–
स्तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ संधास्यते राक्षसः।
एताबद्धि विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन नालोचितं
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।। 6/8

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्त लिखित मुद्राराक्षस नाटक से लिया गया है।

संदर्भ – राक्षस भाग्य के विपरित होने का परिणाम ही मानता है कि मलयकेतु राक्षस की वफादारी पर संदेह करता है।

अन्वय – यः अधुना अपि बीजनाशं नष्टान् स्वामिनः शुश्रूषते असौ राक्षसः अक्षतः तेषाम् वैरिभिः कथं सन्धास्यते। हि एतावत् विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन न आलोचितं अथवा दैवेन उपहतस्य सर्वा बुद्धिः विपर्यस्यति।

अर्थ – मलयकेतु के द्वारा संदेह किये जाने पर राक्षस सोचता है कि उसने यह भो नहीं सोचा कि राक्षस समूल नष्ट अपने आश्रयदाता की मृत्यु के बाद भो उसकी सेवा में लगा हुआ है, वह राक्षस क्या अपने शत्रुओं के साथ, स्वस्थ रहते हुए संधि कर लेगा? इसपर उस विवेक शून्य मलेच्छ ने थोड़ा भो विचार नहीं किया अथवा भाग्य के द्वारा मारे गये व्यक्ति की बुद्धि पहले ही पलट जाती है।

विशेष :

1. म्लेच्छ – भाषान्तरं भाषते इति म्लेच्छः। जिसकी भाषा भिन्न हो।
2. बीजनाशं नष्टान् – बीज भो नष्ट हो जाना, समूलनाश।

   बीजानि इव नष्टा इति बीज + नश् + 0मुल्।
3. विपर्यस्यति – वि+परि+अस्+लट् (तिप्)
4. अंतिम पंक्ति सूक्ति है। राक्षस भाग्य पर विश्वास करता है तथा कहता है कि भाग्य विपरीत होता है तो व्यक्ति की बुद्धि पहले ही विपरीत हो जाती है।
5. अर्थान्तरन्यासालंकार और
6. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

विपर्यस्तं सौधं कुलमिव महारम्भरचलं
सरः शुष्कं साधोर्हृदयमिवनाशेन सुहृदाम्।
फलैर्हीना वृक्षा विगुणनृपयोगादिव नया–
स्तृणैश्छन्ना भूमिर्मतिरिव कुनीतैरविदुषः।। 5/11

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदभ – पराजय के बाद राक्षस बहुत ही निराश है तथा निराशा व सभो अपने द्वारा साथ छोड़ दिये जाने पर सोचता है अब कहाँ जाये? नन्दवंश के विनाश के बाद उसे सारा वातावरण ही अरमणीय लगता है।

अन्वय – महारम्भस्वलं सौधं महारम्भरचलं कुलं इव विपर्यस्तम्, सरः सुहृदां नाशेन साधोः हृदयम् इव शुष्कम्। वृक्षाः विगुणनृपयोगात् नयाः इव फलैः हीनाः, भ्मिं कुनीतेः अविदुषः तृणैः छन्ना।

अर्थ – वास्तुकला के अनुरूप विशाल यह उद्यान वैसे ही नष्ट हो गया है जैसे (महारम्भस्वलं) धर्मादि संस्कार युक्त कुल संस्कारहीन हो जाने पर अस्त–व्यस्त हो जाता है तालाब प्रिय मित्र के विनाश होने पर सज्जनों के हृदय की तरह सूख गया है। वृक्ष फल रहित हो गये हैं जैसे गुणहीन राजाओं की नीति फलविहीन हो जाती है। तृणों से व्याप्त यह भ्मि वैसी दिखायी दे रही ह जैसे कुनीति का आचरण करने से विद्वानों की बुद्धि हो जाती है।

विशेष – प्रस्तुत श्लोक में जीर्ण उपवन की तुलना राजा ने नष्ट हुए नंदवंश से की है।

1. महारम्भरचनम्–यह सौधम् व कुलम् दोनों का विशेषण है।
2. शुष्कम् – शुष + कः प्रत्यय

3. कुनीतेः – कुत्सिता अस्य नीति रिति तस्य।

   नी+क्त (प्रत्यय) भागुरायणादि के कपट निर्देशों द्वारा।

4. मालोपमालंकार

5. शिखरणी छंद

व्याख्या

पितॄन्पुत्राः पुत्रान्परवदभिहिंसन्ति पितरो
यदर्थं सोहार्दं सुहृदि च विमुञ्चन्ति सुहृदः।
प्रियं भोक्तुं तद्यो व्यसनमिव सद्यो व्यवसितः
कृताथोऽयं सोऽर्थस्तव सति वणिक्त्वेऽपि वणिजः।। 6/17

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में धन की महत्ता बताते हुए राक्षस कहता है कि धन के लिए व्यक्ति कुछ भो कर लेता है। धन की महत्ता के आगे लोग रिश्तों की परवाह नहीं करते परन्तु विष्णुदास अपने मित्र चन्दनदास के लिए सारा धन दांव पर लगा देता ह।

अन्वय – यदभः पुत्राः पितॄन्–, पितरः पुत्रान् परवत् अधिहिंसन्ति, यदर्थः च सुहृदः सुहृदि सौहार्दं विमुञ्चन्ति। तत् श्रियं यः व्यसनमिव सद्यः भोक्तं व्यवसितः, सः अयम–अर्थः वणिजः तव वणिक्त्वे सति अपि कृतार्थः।

अर्थ – राक्षस कहते है कि अर्थ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। अर्थ के लिए पुत्र पिताओं को, पिता पुत्रों को शत्रु के समान मार डालते है। धन के लिए मित्र मित्रता को छोड़ देते है परन्तु हे विष्णुदास तुम प्रिय धन को अपने मित्र के लिए व्यसन के समान छोड़ने को तैयार हो गये हो अतः तुम्हारा यह धन तुम्हारे वणिक् होने पर भो सफल हो गया है।

विशेष

1. उपर्युक्त श्लोक में धन का महत्व तथा समाज में यह धारणा कि बनिया धन नहीं खर्च करता की ओर इंगित किया है।

2. सौहार्दम् – सुहृदः भावः सौहार्दम्। सुहृद्+अण्

3. वणित्वेऽपि – अनादर में सप्तमी विभक्ति।

4. विरोधालंकार है

5. शिखरिणी छंद।

व्याख्या

यदि च शकटो नीतः शत्रोर्मतेन ममान्तिकं
किमिति निहतः क्रोधावेशाद्वधाधिकृतो जनः।
अथ न कृतकं तादृक्कष्टं कथं नु विभावये –
दिति मम मतिस्तर्कारूढा न पश्यति निश्चयम्।। 6/20

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदभ – प्रस्तुत श्लोक में चाणक्य की दुर्गम नीति को समझने में असमर्थ राक्षस के मन में तरह–तरह क भाव आ रहे है। वह शकटदास के विषय में सोच रहा है कि उसने पत्र क्यों लिखा? किस की अनुमति से उसे मिलने आया तथा वध करने वाले व्यक्ति को उसने क्यों मारा? यह सभो प्रश्न राक्षस के मन में शकटदास के लिए उठ रहे है।

अन्वय – यदि शत्रोः मतेन शकटः मम अन्तिकं नीतः क्रोधावेगात् वधाधिकृतः जनः किमिति निहतः। अथ कृतकं न, तादृक् कष्टं कथं नु विभावयेद् इति तर्कारूढ़ा मम मतिः निश्चयं न पश्यति।

अर्थ – राक्षस सोच रहा है कि यदि शकटदास शत्रु ;चाणक्यद्ध के कहने पर मेरे पास लाया गया तो पुनः वध के लिए नियुक्त जल्लादों को क्रोध के आवेश में उसने क्यों मारा? यदि शकटदास का मेरे पास पहुँचना छल नहीं था तो उसने वह कपट लेख लिखकर मुझे कष्ट में क्यों डाला? इस प्रकार मुझे कुछ समझ नहीं आ रहा। मेरी बुद्धि तर्क पर चढ़ी हुई है, कुछ निश्चय कर पाने में असमर्थ है।

विशेष – राक्षस की बुद्धि विविध विकल्पों के कारण कुछ भो निश्चय कर पाने में असमर्थ है।
काव्यलिंग अलंकार व हरिणी छंद है

व्याख्या

नायं निस्त्रिंशकालः प्रथममिह कृते घातकानां विघाते
नीतिः कालान्तरेण प्रकटयति फलं किं तया कार्यमत्र।
औदासीन्यं न युक्तं प्रियसुहृदि गते मत्कृतामेव धीरां
व्यापत्तिं ज्ञातमस्य अहम् इमां निष्क्रयं कल्पयामि। श्लोक 6/21

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस राजनीति के विविध पहलुओं पर विचार करते हुए कहता है कि यदि वह शत्रुओं से विरोध करता है तो उसका मित्र चन्दनदास मार दिया जायेगा अतः यह समय विरोध का नहीं है।

अन्वय – इह प्रथमं घातकानां विधाते कृते अयं निस्त्रिंशकालः न, नीतिः कालान्तरेण फलं प्रकटयति तया अत्र किं कार्यम्। प्रिय सुहृदि मत्कृताम् एवं घोरां व्यापत्तिं गते औदासीन्यं न युक्तं ज्ञातम् अहम् स्वतनुम्–अस्य निष्क्रयं कल्पयामि।

अर्थ – चन्दनदास के मारने वालों का विरोध करने पर वह पहले ही मार दिया जायेगा। इस समय राजनीति प्रयोग भो उचित नहीं है क्योंकि राजनीति कालान्तर में फल देती है अतः समय की प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। मेरा मित्र मेरे कारण विपत्ति में फंसा है अतः यहाँ उदासीन नहीं हुआ जा सकता। अतः चन्दनदास को बचाने के लिए मैं अपने शरीर को ही मूल्य रुप में समझता हूँ। इस प्रकार अपने मित्र के लिए राक्षस स्वयं का समर्पण कर देता है।

विशेष :

1. कालान्तरेण – अपवर्गेतृतीया इति तृतीया।
2. निष्क्रयम् – निस+क्री+अच् करणे निष्क्रयः तम्।
3. काव्यलिंग अलंकार।
4. स्रग्धरा छंद।

15.5 सप्तम अंक का सारांश, व्याख्यायें

प्रथम अंक में चाणक्य की राजनीति का बीजन्यास हुआ था उसका इस अक में समाहार है। प्रथम अंक में राक्षस का परिवार नहीं सौंपने के कारण चन्द्रगुप्त ने चन्दनदास को फांसी की आज्ञा दी थी। जब चन्दनदास को फाँसी दी जा रही होती है तो राक्षस मञ्च पर उपस्थित होता है।

मञ्च पर राक्षस को देख चाणक्य कहता है कि यह महात्मा राक्षस है जिसने चन्द्रगुप्त व मुझे परेशान कर रखा था चाणक्य का राक्षस के प्रति सम्मान है तथा वह बताता है कि सिद्धार्थक द्वारा शकटदास से अनजाने में वह कूट पत्र उसने लिखवाया था, उसे इस विषय में कुछ नहीं पता। चाणक्य संक्षेप में अपनी राजनीति का वर्णन करता है। चन्द्रगुप्त राक्षस को देखने आता ह परन्तु वह इस बात के लिए लज्जित है कि चाणक्य ने उसे बिना युद्ध का मौका दिये शत्रुओं को जीत लिया है। अंत में चाणक्य राक्षस से कहता है कि तुम चन्दनदास का जीवन चाहते हो तो 'अमात्य पद' को स्वीकार करो। राक्षस अमात्य पद को ग्रहण कर लेता है तथा चन्दनदास को नगर श्रेष्ठी बना दिया जाता है। इस प्रकार नन्दवंश के नाश तथा राक्षस को चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाने की जो प्रतिज्ञा चाणक्य ने की थी वह पूर्ण होती है तथा भरत वाक्य के साथ नाटक समाप्त होता है।

सप्तम अंक की महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें

व्याख्या

दुष्कालेऽपिकलावसज्जनरुचौ प्राणैः परं रक्षता
नीतं येन यशस्विनाऽतिलघुतामौशीनरीयं यशः।
बुद्धानामपि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना
पूजार्होऽपि स यत्कृते तव गतोवध्यत्वभेषोऽस्मि सः।।

प्रसंग – प्रस्तुत श्लोक विशाखदत्तप्रणीत मुद्राराक्षस नाटक के सप्तम अंक से उद्धृत है।

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस अपने मित्र चन्दनदास की प्रशंसा करता है कि कलयुग में चन्दनदास जैसा व्यक्ति मिलना कठिन है जो अपने मित्र की रक्षा के लिए अपने प्राणों की भो परवाह न करें।

अन्वय – असज्जनरुचौ दुष्काले कलौ अपि प्राणैः परै रक्षता यशस्विना येन औशीनरीयं यशः अतिलघुतां क्लिष्टम् पूजार्हः अपि सः यत्कृते तव शत्रुत्वं गतः, सः एषः अस्मि।

अर्थ – राक्षस कहता है कि असत् लोक प्रवृत्ति वाले पापी कलियुग में भो प्राणों से दूसरों की रक्षा करते हुए यशस्वी जिस चन्दनदास ने राजा शिवि सम्बंधी यश को भो अत्यन्त तुच्छ बना दिया है। विशुद्ध आत्मा वाले इस चन्दनदास ने बुद्धों के चरित्र को श्रेष्ठ आचरणों से तिरस्कृत कर दिया है। पूजा के योग्य यह (चन्दनदास) जिस कारण से तुम्हारी शत्रुता को प्राप्त हुआ है, वह मैं (राक्षस) उपस्थित हूँ।

विशेष –

1. औशीनरीयं यशः – इसमें सतयुग में उत्पन्न उशीनर पुत्र राजा शिवी का उल्लेख है जिसने कबूतर की जान बचाने के लिए अपने शरीर का दान कर दिया था। उशीनर + अञ् प्रत्यय (अपत्यर्थ में)
2. बुद्धानामपि चेष्टितं क्लिष्टम् – उस समय भारत में बौद्ध धर्म के अनुनायियों का अत्यन्त आदर था।
3. एषोऽस्मि सः – अपने मित्र के राक्षस का आत्मसमर्पण है।
4. क्लिष्ट – क्लिष्+क्त।
5. व्यतिरेक व दीपकालंकार तथा
6. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

केनोत्तुङ्गशिखाकलापकपिलो बङ्गः पटान्ते शिखी?
पाशैः केन सदागतेरगतिता सद्यः समासादिता।

केनानेकपदानवासितसटः सिंहोऽर्पितः पञ्जरै?
भीमः केन चलैकनक्रमकरो दोर्भ्यां प्रतीर्णोर्णवः।। श्लोक 7/6

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में चाणक्य यह बताना चाहता है कि राक्षस को वश में करना अत्यन्त कठिन था। किसने महाशूर साहसी, विपुल बुद्धि वाले राक्षस को वश में किया है। कम में विश्वास रखने वाला चाणक्य यह स्वीकार करता है कि भाग्य का साथ दिये बिना राक्षस के वश में करना कठिन था।

अन्वय – उतुङ्गशिखाकलापकपिलः शिखी केन पटान्ते बद्धः, केन पाशैः सदागतेः अगतिता सद्यः समासादिता। केन अनेकपदानवासितसटः सिंहः पञ्जरे अर्पितः नैकनक्रमकरो च भोमः अर्णवः केन दोर्भ्यां प्रतीर्णः।

अर्थ – राक्षस को वश में करना कठिन कार्य था अतः चाणक्य कहता है कि किसने उठती ज्वालाओं से कपिश वर्ण की अग्नि को अपने कपड़े में बांध रखा है? किसने रस्सी से बांधकर सदागति (हवा) की गति को रोक दिया है? किसने हाथियों के मदजल से सुगन्धित अयाल (सटा) वाले सिंह को पिञ्जरे में बंद कर रखा है? तथा किसने चञ्चल मगरमच्छ, घड़ियाल आदि से भरे विशाल समुद्र को बाहुओं के बल पर पार करने का दुष्कर कम किया है।

विशेष –

1. राक्षस को वश में करना चाणक्य समुद्र पार करने जैसा दुष्कर कम मानते है।
2. दीपक अलंकार है।
3. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

व्याख्या

विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव।
स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूकाः।। श्लोक 7/11

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदभ – प्रस्तुत श्लोक में बिना युद्ध से जीतने का श्रेय चन्द्रगुप्त अपने गुरु चाणक्य को देते है।

अन्वय – स्वपतोऽपि मम इव यस्य तन्त्रे कार्य जागरूकाः गुरवः जाग्रति, असौ विगुणीकृतकार्मुकः अपि भवि जेतव्यं जेतुं समर्थ एव।

अर्थ – इस श्लोक में चन्द्रगुप्त मन ही मन सोचता है कि सोते हुए भो (राज्यचिन्ता से विमुख) मेरे समान जिस राजा के राज्य में राजकार्य में सतत सावधान गुरु (चाणक्य के समान मंत्री) निरन्तर जागरूक रहते है, वह प्रत्यञ्चा से रहित धनुष वाला होता हुआ भो संसार के जीतने के योग्य शत्रु को भो जीतने में समर्थ होता है।

विशेष –

1. विगुणीकृतकार्मुकः – धनुष का प्रत्यञ्चा रहित होना।
2. जेतव्यं – जि+तव्यत् प्रत्यय
3. जेतुं ' जि+तुमुन् प्रत्यय।
4. गुरवो जाग्रति – चाणक्य नीति कुशल गुरु है जो हमेशा जागरूक रहते है।
5. कारणाभावे कार्योत्पत्ति अतः विभावनालंकार है।

व्याख्या

द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियतं प्रतिष्ठा।
अद्रव्यमेव भुवि शुद्धनयोऽपि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलज वृक्षवृत्त्या।। 7/14

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – चन्द्रगुप्त द्वारा राक्षस के साथ सम्मानपूर्ण व्यवहार करने पर राक्षस सोचता है कि यह चन्द्रगुप्त की विनम्रता है तथा इस विषय में चाणक्य यशस्वी है क्योंकि–

अन्वय – द्रव्यं जिगीषुम् अधिगभ्य जडात्मनः अपि नेतुः यशस्विनि पदे प्रतिष्ठा नियतम्। अद्रव्यम् एत्य शुद्धनयः अपि मन्त्री शीर्णाश्रयः इलजवृक्षवृत्या भवि पतति।

अर्थ – जीतने की इच्छा वाले राजा को पाकर जडात्मा नेता भो यश पाता है, यह निश्चित है। अकुशल राजा को पाकर नीतिकुशल मंत्री भो उस तरह पतित होता है, जैसे नदी के किनारे का वृक्ष जलाघात से आश्रयविहीन होकर पतित हो जाता है।

विशेष –

1. द्रव्यम्–श्रेय प्राप्ति वाला (यहाँ चन्द्रगुप्त की ओर संकेत है।)
2. अद्रव्यम् – यहाँ मलयकेतु की ओर संकेत है।
3. शुद्धनय – शुद्धनीति वाला राक्षस का स्वयं की ओर संकेत है।
4. शीर्णाश्रयः पतति – नदी के किनारे वाले वृक्ष जिस प्रकार गिर पड़ते हैं वैसे कमजोर राजा वाला अमात्य गिर जाता है।
5. अर्थान्तरन्यास अलंकार
6. वसन्ततिलका छंद है।

व्याख्या

नन्दस्नेहगुणाः स्पृशन्ति हृदयंभृत्योऽस्मि तद्विद्विषां
ये सिक्ताः स्वयमेव वृद्धिमगमंश्छिन्नास्त एव द्रुमाः।
शस्त्रं मित्रशरीररक्षणकृते व्यापारणीयं मया
कार्याणां गतयो विधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वं चिरात्। श्लोक 7/16

प्रसंग – प्रथम व्याख्यानुसार

संदर्भ – प्रस्तुत श्लोक में राक्षस मन ही मन विचार करता है कि वह अपने विरोधी चाणक्य का अमात्य पद स्वीकार करने जा रहा है परन्तु उसके पास अपने मित्र की जान बचाने के लिए कोई रास्ता नहीं है।

अन्वय – नन्दस्नेहगुणाः हृदयं स्पृशन्ति, तद्विद्विषां भत्योऽस्मि, ये द्रुमाः स्वयं सिक्ताः एव वृद्धिम् अगमन् ते छिन्ना एव। मित्रशरीररक्षणकृते मया शरत्रं व्यापारणीयम्, कार्याणां गतयः चिरात् विधेरपि आज्ञाकरत्वं न यान्ति।

अर्थ – महाराज नन्द का स्नेह मेरे हृदय का स्पर्श कर रहा है और मैं उनके शत्रुओं का नौकर बन रहा हूँ जिन वृक्षों को अपने हाथों से सींचकर बढ़ाया है, उसी का उच्छेदन करना है। मित्र की रक्षा के लिए मुझे शस्त्र (मंत्रित्व पद) स्वीकार करना है। पूर्व जन्म के कर्मों की गतियाँ चिरकाल से विधाता की आज्ञाकारिता को प्राप्त नहीं होती है। अर्थात् विधाता भो कार्य की गति को नहीं समझ पाता फिर मनुष्य की तो बात ही क्या है।

विशेष –

1. प्रस्तुत श्लोक की अंतिम पंक्ति सूक्ति है। कार्य की गति को विधाता स्वयं नहीं जानता अतः मनुष्य कैसे जान सकता है?
2. अर्थान्तरन्यासालंकार है।
3. शार्दूलविक्रीडितम् छंद है।

15.6 पारिभाषिक शब्दावली

1. कञ्चुकी–राजा का विश्वास प्राप्त, रंगमहल का द्वारपाल।
2. वैतालिकौ – स्तुतिगान करने वाले, वैतालिक हमेशा दो होते हैं।
   विताल + ठक् प्रत्यय।
3. प्रकाशम् – सर्वश्राव्यं प्रकाशम् (मंच पर जो बात सबको) सुनाने के लिए कही जावें।
4. परिषद् – सामाजिक, दर्शक।
5. ऐभीं कृत्तिम् – गजासुर का चर्म है जिसे शिवजी ने ताण्डव नृत्य के समयधारण किया था।
6. प्रवेशक–भूत व भविष्य की सूचना देने वाला।
7. सचिवायत्तसिद्धि राजा – जो सचिव के प्रयत्न से राजा बनता है। चन्द्रगुप्त सचिवायत्तसिद्धि राजा है।
8. उज्जिहानस्य – उद्+हा (गतौ) + शानच् (कतरि) प्रयोग किया जाता है।
9. दुर्गपालः – जेलर। मंत्री मण्डल में सुरक्षा मंत्री था। कैदियों को मुक्त करना इसका दायित्व था।
10. भरतवाक्य – नाटक की समाप्ति पर भरत वाक्य का प्रयोग किया जाता है। भरत का अर्थ नट है और नट द्वारा सभी की समृद्धि की कामना की जाती है।
11. परिकल्पना – हाथी की पीठ पर प्रयुक्त होने वालो गद्दी।
12. विगुणीकृतकार्मुकः – धनुष का प्रत्यञ्चा से रहित होना।
13. अधोमुखानाम् – बाण जब तूणीर में रखे जाते है तो उनका मुख नीचे की ओर होता है।
14. परिवारः, परितार्यते अनेन इति परि+वृ+धञ् करणे। जो चारों ओर से घेरते हैं अर्थात् सेवक वर्ग।
15. जवनिका – यवनिका पर्दे को कहते है। उसका प्राकृत जवनिका है।
16. कुटुम्बिन्या – पुत्रवती गृहस्थिता नारी कुटुम्बिनी कहलाती है।
17. निस्त्रिंशः – तलवार जो नाप में तीन अंगुलियों से अधिक हो।

15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

बोध प्रश्न

1. मलयकेतु के मन में संशय के बीज बोने में सफल रहा–

   (अ) भागुरायण (ब) शकटदास

   (स) चाणक्य (द) सिद्धार्थक ( )

2. मलयकेतु को विश्वास हो गया है कि पर्वतेश्वर की मृत्यु करायी–

(अ) चाणक्य (ब) राक्षस

(स) चन्द्रगुप्त (द) कञ्चुकी ( )

3. विष्णुदास किस दुःख के कारण फांसी लगाने जा रहा है–

(अ) चन्दनदास को फांसी दिये जाने पर (ब) राक्षस को पकड़े जाने पर

(स) चाणक्य के भय से (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं ( )

4. प्रथम अंक मे जो कूट पत्र लिखा गया था वह खुलासा होता है–

(अ) तृतीय अंक में (ब) चतुर्थ अंक में

(स) पञ्चम अंक में (द) सप्तम अंक में ( )

5. निम्न श्लोकों की व्याख्या कीजिये –

(अ) मम विमृशतः कार्यारम्भे विधेरविधेयता–
मपि च कुटिलां कौटिल्यस्य प्रचिन्तयतो मतिम्।
अपि च विहिते मत्कृत्यानां निकाममुपग्रहे
कथमिदमिहेत्युन्निद्रस्य प्रयात्यनिशं निशा।। श्लोक 4/2

(ब) साध्ये निश्चितमन्वयेन घटितं बिभ्रत् सपक्षे स्थिति
व्यावृत्तञ्च विपक्षतो भवति यत्, तत् साधनं सिद्धये।
यत् साध्यं स्वयमेव तुल्यमुभयोः पक्षे विरुद्धञ्च यत्
तस्याङ्गीकरणेन वादिन इव स्यात् स्वामिनो निग्रहः ।। श्लोक 5/0

6. राक्षस आत्म समर्पण के लिए तैयार हो जाता है–

(अ) विष्णुदास को बचाने के लिए (ब) चाणक्य के भय से

(स) चन्दनदास को बचाने के लिए (द) मंत्री बनने के लोभ से ( )

7. भरतवाक्य पढ़ा जाता है–

(अ) नाटक के प्रारम्भ में (ब) बीच में

(स) दृश्य विधान के अनुसार (द) नाटक की समाप्ति पर ( )

8. संस्कृत नाटकों से भिन्न मुद्राराक्षस की विशेषता है–

(अ) अंक विभाजन (ब) नांदी पाठ

(स) भरत वाक्य (द) दृश्य विधान ( )

9. निम्न श्लोकों की व्याख्या कीजिये–

(अ) विपर्यस्तं सौधं कुलमिव महारम्भस्वलं
सरः शुष्कं साधोर्हृदयमिवनाशेन सुहृदाम्।
फलैर्हीना वृक्षा विगुणनृपयोगादिव नया–
स्तृणैश्छन्ना भूमिर्मतिरिव कुनीतैरविदुषः।। 5/11

(ब) द्रव्यं जिगीषुमधिगभ्य जडात्मनोऽपि
नेतुर्यशस्विनि पदे नियतं प्रतिष्ठा।
अद्रव्यमेव भुवि शुनयोऽपि मन्त्री
शोर्णाश्रयः पतति कूलज वृक्षवृत्या।। 7/14

प्रश्नों के उत्तर –

1. (अ)
2. (ब)
3. (अ)
4. (स)
5. (अ) देखिये भाग सं. 15.2.1

   (ब) देखिये भाग सं. 15.3.3
6. (स)
7. (द)
8. (द)
9. (अ) देखिय भाग सं. 15.4.2 (ब) देखिये भाग 15.5.4

15.8 सारांश

इस इकाई में आपने मुद्राराक्षस के चतुर्थ अंक से सप्तम अंक तक का संक्षिप्त सारांश तथा कुछ महत्त्वपूर्ण व्याख्यायें पढ़ी। आपने पिछली इकाई में पढ़ा था कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य में कृतक कलह होने के बाद भागुरायण मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति संदेह उत्पन्न कर देता है मलयकेतु समझता है कि राक्षस ने ही उसके पिता पर्वतेश्वर को मरवाया है तथा राक्षस स्वयं चन्द्रगुप्त का मंत्री बनना चाहता है। मलयकेतु भागुरायण की बातों पर विश्वास कर कुसुमपुर पर आक्रमण कर देता है। चाणक्य शत्रु सेना पर अधिकार कर लेता है और चन्दनदास को राजद्रोह के अपराध में फांसी की सजा दी जाती है। राक्षस अपने को नितान्त अकेला व निराश समझकर अपने मित्र को फांसी से बचाने के लिये आत्म समर्पण करने को तैयार हो जाता है। इस प्रकार अन्त में चाणक्य संक्षेप में अपनी कूटनीति का वर्णन करता है और बिना युद्ध किये वह राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री बनाने में सफल हो जाता है।

इकाई के अन्त में कुछ महत्त्वपूर्ण सूक्तियों की व्याख्या की गयी है। सूक्तियाँ भाषा को गति व प्रौढ़ता प्रदान करती है। वह जीवन के शाश्वत सत्य को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती है। कवि अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल है। विशाखदत्त कृत यह नाटक घटनाओं पर आधारित होने के कारण घटना प्रधान नाटक है तथा संस्कृत नाटकों में अपनी शैली का यह एक अद्वितीय नाटक है।

15.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
2. मुद्राराक्षसम्, श्री निरञ्जन मिश्र, हंसा प्रकाशन जयपुर, 1999.
3. संस्कृत कविदर्शन डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा, वाराणसी, 2003.
4. संस्कृत महाकवि और काव्य, रामजी उपाध्याय, रामगोपाल मिश्र, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहबाद, 1958.
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1953.

इकाई –16

मुद्राराक्षसम् नाटक के प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण तथा नायकत्व का निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 नाटकीय पात्रों का चरित्र–चित्रण
 16.2.1. चाणक्य का चरित्र–चित्रण
 16.2.2. कौटिल्य अथवा कौटल्य – विचार – चर्चा
 16.2.3 चाणक्य और उसकी राजनीति
 16.2.4 राक्षस का चरित्र –चित्रण
 16.2.5. अन्य पात्रों की दृष्टि में राक्षस
 16.2.6. राक्षस और उसकी राजनीति
 16.2.7 नाटक का प्रतिनायक राक्षस
 16.2.8. चाणक्य और राक्षस का तुलनात्मक चरित्र
  16.2.8.1 चरित्रों में साधर्म्य
  16.2.8.2 चरित्रों में वैधर्म्य
 16.2.9. चन्द्रगुप्त का चरित्र–चित्रण
 16.2.10. मलयकेतु का चरित्र–चित्रण
  16.2.10.1 मलयकेतु की विवेकशून्यता
 16.2.11. चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का तुलनात्मक चरित्र
 16.2.12. अन्य पात्र
  16.2.12.1 भागुरायण और सिद्धार्थक
  16.2.12.2 विराधगुप्त और शकटदास
  16.2.12.3 चन्दनदास
  16.2.12.4. निपुणक
  16.2.12.5. करभक
 16.2.13. मुद्राराक्षस नाटक का नायक चाणक्य
16.3 पारिभाषिक शब्दावली
16.4 अभ्यासार्थ प्रश्न
16.5 सारांश
16.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

16.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आप सभो यह जान सकेंगे कि महाकवि विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षस नामक नाटक में सभो नाटकीय पात्रों का चरित्र चित्रण किस मनोवैज्ञानिक तरह से हुआ है।

इन पात्रों की विशषताएँ क्या–क्या हैं तथा ये नाटक को किस प्रकार प्रभावित करते हैं । और उसकी कथावस्तु के निर्वाह में ये अपनी भ्मिका का निर्वाह कैसे करते हैं । इन सभो बातों का ज्ञान इस इकाई को पढने से होगा । इन पात्रो के चरित्रगत गुण क्या हैं । तथा वे कैसे यथार्थ होते हुए भो आर्दश के रूप में स्थापित हो गये हैं इसका भो छात्रों को ज्ञान होगा ।

16.1 प्रस्तावना : –

विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस एक विलक्षण कोटि का नाटक है । इस नाटक की प्रथम विशेषता तो यह है। कि इसमें नायिका का अभाव है । साथ ही विदूषक नामक पात्र का भो सर्वथा अभाव है । इस नाटक की एक अन्य विशेषता है इसका चरित्र चित्रण । कवि ने चरित्रों के विकास को एक नए ढ़ंग से चित्रित करने का प्रयास किया है । और उसमें वह पूर्ण सफल रहा है यदि नाटक के अन्दर कोई अन्य विशेषता ना होती, केवल चरित्र चित्रण ही होता तब भो यह नाटक ग्राह्य और उपादेय होता । इसके साथ ही यह विशुद्ध राजनीति पर आधारित घटना प्रधान नाटक है इस नाटक में Unity of action का जैसा सुन्दर निर्वाह हुआ है ।

वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । इसमें छोटे से छोटे पात्र से लेकर बड़े से बड़े पात्र तक सभो की अपनी
गतिविधि का लक्ष्य और आदि से अन्त तक घटित होने वाली समस्त घटनाओं का उद्देश्य केवल मात्र राक्षस को वश में करना है । नाटक की एक अन्य विशेषता है कि इसमें किसी भो धर्म के प्रति कोई आस्था नही है । राजनैतिक नाटक होने के कारण नैतिकता का यहाँ कोई मूल्य नही है। विशाखदत्त ने अंको का दृश्यों में विभाजन कर एक नवीन मौलिकता का श्री गणेश किया है ।

16.2. नाटकीय पात्रों का चरित्र–चित्रण

16.2.1 चाणक्य : –

किसी भो व्यक्ति के चरित्र का यदि पता करना हो कि इस व्यक्ति का चरित्र कैसा है , तो इसको पता करने के 3 प्रकार हैं । उस व्यक्ति ने पात्र रूप में आत्माभिव्यक्ति कैसी की है । इस प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति दृश्य काव्यों में 'स्वगतम्' के द्वारा होती है ।

2. उस पात्र के विषय में दूसरे पात्रों की क्या सम्मति है तथा

3. नाटक के अन्दर नाटककार के स्थान – स्थान पर आए हुए अपने विचार । इन्ही तीन प्रकारों से हम किसी व्यक्ति के चरित्र का अवगाहन कर सकते हैं और उसके चरित्र के विषय में किसी निर्धारित निष्कष पर पहुँच सकते हैं।

मुद्राराक्षस नाटक के अन्दर हम प्रत्यक्ष रूप से रड्.गमञ्च पर चाणक्य को तीन अंको में देखते हैं । प्रथम अंक में जिसमें सर्वात्मना चाणक्य की राजनीति का बीजान्यास हुआ है ।

तृतीय अंक में जिसमें राक्षस को धोखा देने के लिए चन्द्रगुप्त के साथ कृतक्–कलह का आयोजन किया है और अन्तिम सप्तम अंक में जहाँ राक्षस के आत्मसमर्पण के उपरान्त वह राक्षस को सम्राट चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार करवाता है ।

इस प्रकार हम देखतें हैं कि चाणक्य के अन्दर कार्य करने की शक्ति और क्षमता अनन्त है। वह किसी प्रकार की क्लान्ति का अनुभव नही करता है। प्रथम अंक की समाप्ति पर वह कहता है कि मेरा सर्वस्व चला जाए किन्तु सैकडो सेनाओं को अपने कौशल से परास्त करने वाली एकमात्र मेरी बुद्धि न जावे –

एका केवलमेव साधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका ।
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ।। 1/26

उसको अपनी बुद्धि और नीति पर भरोसा है । उसने अपनी बुद्धि से ही मलयकेतु की सेनाओं को जीत लिया है। उसने अपनी अद्भद् बुद्धि की प्रखरता से नन्दवंश के वध रूपी दुस्तर प्रतिज्ञार्णव को पार किया है। वह दृढ़ प्रतिज्ञ, कूटनीतिक विशारद एवं महान राजनीतिज्ञ है। वह चन्द्रगुप्त का गुरू, मन्त्रि और पथ प्रदर्शक सभो कुछ है। एकमात्र उसी की कृपा से वृषल चन्द्रगुप्त नन्द के सिंहासन पर बैठ सका है। तभो तो राक्षस दूसरे अंक में कहता है कि चाणक्य को इस पर गर्व है कि

''चाणक्योऽपि मदाश्रयादयमभूद्राजेति जातस्मयः '' 2/23

अर्थात् यह चन्द्रगुप्त मेरी ही सहायता से राजा हुआ है। इस तरह के उत्पन्न गर्व वाला है।

मौर्य साम्राज्य के मन्त्रित्व का उपयोग करते हुए भो चाणक्य राजसी भोग–विलास के केन्द्र राज भवन से दूर नगर से बाहर एक सामान्य सी कुटी में रहता है। इस सामान्य सी कुटी को भो चन्द्रगुप्त के कञ्चुकी ने एक असाधारण विभ्ति के रूप में देखा है । वह कहता है – अहो राजाधिराजमन्त्रिणो विभ्तिः । तथाहि – 3/15

उपलकलशमेतद्भेदकं गोमयानां बटुभिरुह्यतानां बर्हिषां स्तूपमेतत्
शरणमपि समिद्भि शुष्यमाणाभिराभिर्विनर्मितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ।। 3/1(5)

अर्थात् – अरे ! राजाओं के भो राजा के मन्त्रि का ऐश्वर्य ।

क्योंकि–उपलों को तोड़ने वाला यह पत्थर का टुकड़ा है, शिष्यों द्वारा लाए हुए कुशाओं का यह ढ़ेर है। ,धूप में सूखती हुई समिधाओं के भार से ढ़के हुए छत के प्रान्तभाग वाला जीर्ण दीवारों वाला घर भो दिखाई दे रहा है ।

कहाँ राजाधिराज चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व और कहाँ यह साधारण रहन –सहन । इस प्रकार का चित्रण करके विशाखदत्त ने आजकल के राजनैतिक नेताओं को यह सन्देंश दिया है कि राज्यों का निर्माण, संचालन और उत्थान केवल बिजली के बल्बों से प्रकाशित बडी–बडी अट्टालिकाओं में रहकर ही नही होता है अपितु एक सामान्य से स्थान में रहकर भो हो सकता है। दैव के ऊपर विश्वास करना तो चाणक्य जानता ही नही है। उसे अपने पुरूषार्थ पर अटल विश्वास है । वह यह मानने के लिए तैयार ही नही है कि कार्यों का फल भाग्यायत्त है । उसकी सम्मति में मूर्ख व्यक्ति ही भाग्य में विश्वास करते है –

''दैवम् विद्वांसः प्रमाणयन्ति '' (3/पृष्ठ 200) ।

चाणक्य का स्वभाव क्रोधी है –

''कौटिल्यः कोपनोऽपि '' 4/1(2) ।

किन्तु उसको क्रोध तब आता है जब उसके आत्मसम्मान को ठेस पहुँती है ।

अथवा उसकी किसी योजना को असफल बनाने की चेष्टा की जाती है । चाणक्य की क्रोध–मुद्रा का गम्भोर वर्णन उसके स्वभाव का परिचायक है यथा –

शिखां मोक्तुं बद्धामपि पुनरयं धावति करः
प्रतिज्ञामारोढुं पुनरपि चलत्येष चरणः ।

प्रंणाशान्नंदानां प्रशममुपयातं त्वमधुना
परीतः कालेन ज्वलयसि मम क्रोधदहनम् ।।

और राजा चन्द्रगुप्त इस क्रोध को देखकर कह उठता है कि

''अये, कथं सत्यमेवार्यः कुपितः ।

यह तो उस क्रोध का वर्णन है जो कृत्रिम है । इसी से उसके वास्तविक क्रोध के रूप का भो का पता लगाया जा सकता है । चाणक्य को विलम्ब एक मिनट का भो सहन नही।

इसी विलम्ब के कारण वह अपने शिष्य शाड्.र्गरव पर भो झुंझला उठता है । परन्तु साथ ही कहता है कि–

'वत्स, कार्याभिनियोग एवास्मानाकुलयति
न पुनरुपाध्यायसहभूः शिष्यजने दुःशीलता ।

वह इस बात को भली भाँति जानता है कि अध्यापकों का यह स्वभाव होता है कि वे अपने शिष्यों पर यदा–कदा झुंझलाया करते हैं। वह लोकोत्तर चरित्र है । अर्थ –शास्त्र के प्रणेता और मुद्राराक्षस के नायक व सर्वेसर्वा चाणक्य में हम एक आश्चर्य–जनक भिन्नता देखते हैं । अर्थशास्त्र का चाणक्य मुद्राराक्षस में निःस्वार्थ, निरीह एवं लोकभावना के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है –

''निरीहाणामीशस्तृणमिवं तिरस्कारविषयः ''

ऐसा कहकर कञ्चुकी ने चाणक्य के प्रति एक महान सम्मान प्रकट किया है। इससे बढकर और अलौकिकता क्या होगी । वह आत्मविश्वासी है। नन्दवंश को समूल नष्ट करने वाला वह अपने को मानता है, देव को नही, मनोविज्ञान का वह अद्वितीय वेत्ता है , वह ब्राह्मण है । ब्रह्मवंश में उत्पन्न हुआ है। असाधारण मेधा सम्पन्न है साथ ही धूर्तता में भो अग्रणी है। राक्षस के गणों को जितना वह समझता और सम्मान करता है। अतः एवास्मांकं त्वत्संग्रहे यत्नः, (प्रथम अंक)

उतना सम्भवतः राक्षस स्वंय भो अपने गुणों को नही जानता।

चाणक्य ने अपने पुरुषार्थ से सम्पूर्ण नन्दवंश को ध्वस्त करके चन्द्रगुप्त को राज्य सिंहासन पर बैठा दिया और स्वंय ''कमलपत्रमिवाम्भसा'', निर्लिप्त रहा है। उसका अपने इस महान कार्य के ऊपर गर्व है, उसको अपार हर्ष है, पर वह मदान्ध नही है । एक नवीन साम्राज्य का प्रतिष्ठापक मदान्ध कैसे हो सकता है। वह सतत् जागरूक है–

''जागर्ति खलु कौटिल्यः'' ।

कौमुदी महोत्सव की रंगरेलियाँ एक नवीन प्रौढ़ अवस्था के राजा को तो आकृष्ट कर सकती है परन्तु भविष्य पर निरन्तर दृष्टि रखने वाले व्यक्ति को इन भोगलिप्साओं से क्या है। वह तो स्पष्ट कहता है कि –

सोऽयं व्यायामकालो नोत्सवकाल इति
दुर्गसंस्कारे प्रारब्धव्ये किं कौमुदीमहोत्सवेति।

वह अपने शत्रुओं को एक क्षण के लिए भो पसन्द नही करता, उनकी चर्चा भो उसको अच्छी नही लगती है । उनके नाम की चर्चा आते ही वह क्रोध से तिलमिला उठता है। इसके साथ ही वह शत्रुओं की निन्दा मात्र करने में अपने बहुमूल्य समय को नष्ट करना भो नही चाहता है। वह शत्रुओ के प्रति यमराज के समान क्रूर होता हुआ भो राक्षस के गुणों की प्रशंसा करता है, जिसको वह बुद्धिमान ,योग्यतम व्यक्ति ,साहसिक योद्धा और योग्य अमात्य समझता है। चाणक्य अविश्वासी है, अविश्वास का पुतला है। उसको न अपने गुप्तचरों पर भरोसा है और न ही चन्द्रगुप्त पर । क्योकि हम सम्पूर्ण नाटक में देखते हैं, कि चाणक्य की योजनाओ का स्रोत वह स्वयं ही है । किसी अन्य व्यक्ति के साथ किसी भो योजना पर मन्त्रणा करते हुए हम उसको नही पाते हैं । यदि किसी पर उसको विश्वास है तो उसके स्वयं के ऊपर और अपनी बुद्धि पर। उसका यही अविश्वास उसको हृदय की भावनाओं से दूर कर देता है। चाणक्य के हृदय में भावुकता नाम की वस्तु का सवथा अभाव है और यही अभाव उसकी विजय का कारण है। मनुष्यों पर अविश्वास के समान उसको सिद्वान्तों पर भो विश्वास नही है। चाणक्य का एकमात्र उद्देश्य है राक्षस को वश में करना । वह चाहता है कि राक्षस कि भक्ति चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रति हो जावे। चाणक्य का पर्याप्त संगठन है ।

उसकी कूटनीति की यह विशेषता है कि उसके गुप्तचर अपने आप में एक दूसरे को नहीं पहिचानते हैं कि वे एक ही उद्देश्य को लेकर कार्य करने वाले चाणक्य के व्यक्ति है । वह अपने अनुयायियों में प्रेरणा फूँकने में समर्थ है , जो उसकी दक्षता , कठोरता ,जागरूकता और लक्ष्य से प्रभावित ह । उसके जितने भो सहायक हैं , ऐसा मालूम पडता है कि उनकी कोई अभिलाषा नहीं उच्चाकाँक्षा नही और स्वार्थसिद्धि नही । चाणक्य की महत्वाकाँक्षा ही उनकी महत्वाकाँक्षा है । चाणक्य की कार्यसिद्धि नही उनकी कार्यसिद्धि है । चाणक्य के अन्दर वह शक्ति है कि वह अस्त और उदय युगपत् कर सके और इसीलिये वह

'' धाम्नातिशाययति धाम सहस्रधाम्नः'' है ।

चाणक्य प्रतिहिंसा और प्रतिशोध का अवतार है ।वह ही इसी नाटक के घटनाक्रम का एकमात्र नियन्ता है । वह जो कुछ करता है । अपने लिये नही अपने स्वार्थ भाव से नही अपितु चन्द्रगुप्त के लिये और मौर्य साम्राज्य को बद्धमूल करने के लिये करता है । इसको अपने यश की, अपने नाम की चिन्ता नही है । चाणक्य अमात्यराक्षस की प्रज्ञा पराक्रम शक्ति और राजभक्ति की महत्ता को स्वीकार करता हुआ भो उसको अपना प्रतिस्पर्धी मानने के लिये तैयार नही । वह कहता है कि –

चाणक्यस्त्वमपि च नैव केवलं ते साधर्म्य मदनुकृतेः प्रधानवैरम् ''

चाणक्य के अपने व्यक्तित्व की चरम परिणति ही इसमें है कि वह अपनी दूरदर्शिनी बुद्धि के द्वारा अपने शत्रु राक्षस को अपना मित्र और अपने आदर्शों का पालक बना लेता है ।

16.2.2 कौटिल्य अथवा कौटल्य – विचार – चर्चा

मुद्राराक्षस नाटक के ऐतिहासिक पात्रों में प्रमुखतम पात्र चाणक्य है । यह चणक का पुत्र है। उसके पूर्ववर्तियों में एक 'कुटिल' हुआ था , जिसके आधार पर उसका नाम कौटिल्य हुआ ऐसी कुछ विद्वानों के द्वारा व्याख्या की जा सकती है । ऐसा प्रतीत होता है कि चाणक्य की कुटिल नीति के कारण और नन्दवंश के बडी क्रूरता से समूल विनष्ट करने के कारण विद्वानों के उसके नाम की व्याख्या कुटिल से कौटिल्य की है । वस्तुतः उसका यथार्थ नाम कौटल्य था । उसके पिता का नाम कुटिल न होकर कुटल था।

अर्थात् जो कुटं–कुटपूर्णं धान्यं लाति गृहमिति इति कुटलः अर्थात कुट का अर्थ है घडा अर्थात् जो घटपरिमित धान्य का संग्रह करता है । अथवा कुट का अर्थ परिवार भो होता है । इस परिवार के अर्थ में ग्वेद मे कूट शब्द का प्रयोग हुआ है । अर्थात् जो केवल अपने परिवार की आजीविका चलाने मात्र धन का संचय करता है इस प्रकार की व्याख्या करने पर चाणक्य के पिता की त्याग भावना व्यक्त होती है ।

अतः उसके पिता का नाम कुटल हुआ है अपत्य अर्थ में कौटल्य बना । कौटल्य ही कौटिल्य मे परिणत हो गया है । इस प्रकार चाणक्य और कौटल्य उसके पैतृक नाम है । उसका वास्तविक नाम विष्णुगुप्त है । वह यज्ञ म की जाने वाली बलिदान सम्बन्धी क्रियाओं के रहस्यों के ज्ञान में परम प्रवीण था । यथा–

यस्याभिचारवज्रेण ज्वलन्प्रोज्जवलतेजसः।
पपात मूलतः श्रीमान् सुपर्वा नन्दपर्वतः। कामन्दकीय नीतिसार 1–4

अथवा

कौटिल्यः कोपनोपि स्वयमभिचरणज्ञातदुःखप्रतिज्ञो।
दैवात्तीर्णप्रतिज्ञः पुनरपि न करोत्वायतिग्लानिभीतः।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चाणक्य स्पष्ट मस्तिष्क वाला, आत्मविश्वासी, कूटनीतिज्ञ, षड्यन्त्र करने वाला कठोर राजनीतिज्ञ, अपनी इच्छा की पूर्ति को सर्वात्मना दृढ निश्चय के साथ पूर्ण करने वाला और अपनी कूटनीतिक योजनाओं का अन्त तक निर्वाह करने वाला चित्रित किया गया है ।

अन्य पात्रों की दृष्टि में चाणक्य :– भागुरायण को चाणक्य की राजनीति नियति की तरह चित्र विचित्र रूप वाली दिखाई देती है ।

मुहुर्लक्ष्योद्भेदा मुहुरधिगमाभावगहना
मुहुः सम्पूर्णांगी मुहुरतिकृशा कार्यवशतः।
मुहुर्नश्यद्बीजा मुहुरपि बहुप्रापितफले
त्यहो चित्राकारा नियतिरिव नोतिर्नयविदः।। 5/3

चाणक्य के सम्बन्ध में चन्दनदास की यह उक्ति कि –

'फलेन विसंवादितमस्य विकत्थितम्' (प्रथम अंक, पृष्ठ 67)

उसके व्यक्तित्व की महत्ता को और भो अधिक अभिव्यक्त्ति करती है । चाणक्य की राजनीति इतनी संश्लिष्ट है कि राक्षस के लिए भो उसको समझ पाना एक कठिन कार्य है । षष्ठ अंक में सिद्धार्थक कहता है कि –

जयति जयनकार्यं यावत्कृत्वा च सर्वं ।
प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः ।। 6/1

यही बात वह अपने मित्र समिद्धार्थक से कहता है कि जिस आर्य चाणक्य की नीति का अवगाहन राक्षस भो नहीं कर सका, उसी को तुम जानना चाहते हो ।

'अतिमुग्धोऽसीदानीं त्वं यतोऽमात्यराक्षसेनाप्यनवगाहितपूर्वमार्यचाणक्यस्य चरितमवगाहितुमिच्छसि' (पृष्ठ 346)

राक्षस ने चाणक्य को देखकर अपनी भावना इन शब्दों में व्यक्त की है –

' अयं दुरात्मा अथवा महात्मा कौटिल्य :' –
आकरः सर्वशास्त्राणां रत्नानामिव सागरः ।
गुणैर्न परितुष्यामो यस्य मत्सरिणो वयम् ।। 7/7

और इस प्रकार हम देखते है कि नाटककार विशाखदत्त ने उसको स्वंय 'महात्मा' कहकर अपनी उसके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है ।

16.2.3. चाणक्य और राजनीति–

यदि चाणक्य की राजनीति को हम एक शब्द में कहना चाहें तो वह कह सकते हैं कि –

''दैव की गति के समान चाणक्य की नीति भी अश्रुत –गति है ।''

किन्तु जहाँ चाणक्य की कूटनीति इस प्रकार की है वहाँ यह भो स्पष्ट है कि उसकी नीति कुछ अधिक उच्च नैतिक गुणों पर आधारित नहीं है सामान्य से सामान्य धोखा देने से लेकर जालसाजी और हत्या करने तक प्रत्येक योजना चाणक्य के उस निश्चय की पूण करने में योग देती प्रतीत होती है, जिस लक्ष्य का निर्धारण चाणक्य ने स्वयं किया है । चाणक्य की यह अन्तिम इच्छा है कि वह अपने आश्रित चन्द्रगुप्त को गद्दी पर स्थित कर दे और राक्षस को पुनः लाकर उसकी सेवा में नियुक्त कर दे, जिसकी नन्दों के प्रति भक्ति विख्यात है । चाणक्य समझता है कि बिना राक्षस के चन्द्रगुप्त के पक्ष में किये मौर्य साम्राज्य स्थिर नहीं हो सकता है।

यदि साध्य, साधन के भले या बुरे का निर्णायक है ,तो उसका निर्णय इस स्थान पर किया जा सकता है । साथ ही यहाँ यह भो ध्यान में रखना चाहिये कि कूटनीति और राजनीति का खेल कम या अधिक संदिग्ध नैतिकता का खेल होता है । राजनीति में नैतिक मापदण्ड़ सामाजिक या धार्मिक मापदण्ड़ से सर्वथा भिन्न होते है । महान् राजनीजिज्ञ चाणक्य मौर्य साम्राज्य का प्रिंस बिस्मार्क कहलाता है ।

साध्य साधन की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करता है और साध्य यहाँ पर सुन्दर और महान है । चाणक्य ने कोई काम बुरा नहीं किया । उसको तो राजनीतिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार करना पडा। जनता के लिए अभिशाप के रूप में थे। अतः जनता विप्लव करने के लिए तैयार थी । इस जनता का उद्धारक चन्द्रगुप्त था और इसकी सहायता करने में। चाणक्य एक उचित व्यक्ति की सहायता कर रहा था। राक्षस नन्दों का अग्रणी था । उनका सहायक था।

यदि चाणक्य उसको अपने मार्ग पर चलने देता तो यह निश्चय था कि जनता में एक क्रान्ति, एक विद्रोह एवं एक विप्लव खड़ा हो जाता । जिससे देश के अन्दर रक्त की नदियाँ बह जाती। इस प्रकार चाणक्य को प्रजा में होने वाली रक्तपात परिपूर्ण क्रान्ति और चन्द्रगुप्त इन दोनों बुराइयों में से किसी एक को चुना चुनना था । चाणक्य ने इनमें से कम बुराई को चुना और आचारशास्त्र के नियमों को थोड़ा हटकर उसने धोखा ,कपट और हत्या का आश्रय लिया । इस अवस्था में इसको एक बार के लिये क्षस्य माना जा सकता है क्योंकि उद्देश्य महान् और सुन्दर था । प्रर्वतक सर्वार्थसिद्धि और मलयकेतु के 5 म्लेच्छ राजाओं की हत्या राजनीतिक आवश्यकतायें थीं । इसके विपरीत मलयकेतु को कैद करके केवल छोड़ ही नहीं दिया अपितु उसको उसका राज्य भो वापिस कर दिया।

शकटदास और चन्दनदास को फाँसी की सजा से भयभोत करना वास्तविकता की अपेक्षा '' राजनैतिक बहाना मात्र'' था चाणक्य की राजनीति की सबसे अधिक घनिष्ट मित्र समझता झणपक जीवसिद्धि है, जिसको राक्षस अपना सबसे अधिक घनिष्ट है । राक्षस ने इसके द्वारा चन्द्रगुप्त पर विषकन्या का प्रयोग किया था । दूसरा पात्र , जो चाणक्य की कूटनीति को क्रियात्मक रूप देने वाला है , भागुरायण है। जिस भद में राक्षस असफल हो गया उसी भद को करने में चाणक्य सफल हो गया है।

चाणक्य की कूटनीति का केन्द्रबिन्दु वह कपट–पत्र है, जिससे उसने राक्षस और मलयकेतु में भद डाला है। जिस पत्र के परिणामस्वरूप राक्षस के 5 परम विश्वस्त–म्लेच्छ राजागण मृत्यु के घाट उतार दिये गये । राक्षस का निश्शस्त्र वध्यस्थान पर भजने वाला । वह विष्णुदास का कपट मित्र चाणक्य की कूटनीति का अन्तिम प्रयोग है । चाणक्य ने अपनी कूटनीति को राक्षस के सामने इस प्रकार व्यक्त किया है –

भृत्या भद्रभटादयः स च तथा लेखः स सिद्धार्थकः
तच्चालड़.करणत्रयं स भवतो मित्रं भदन्त : किल ।

जीर्णोद्यानगत : स चापि पुरुषः क्लेशः स च श्रेष्ठिनः
सर्वं मे वृषलस्य वीर भवता संयोगमिच्छोर्नयः ।। 7/9

अर्थशास्त्र के लेखक कामन्दक ने चाणक्य को अपने आध्यात्मिक गुरू के रूप में देखा है । उसने उसको प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न, वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् और अर्थशास्त्र के प्रणेता के रूप में वर्णित किया है । आर्यशूर की जातकमाला कौटिल्य को अर्थशास्त्र का प्रणेता मानती है । यह महान् राजनीतिक विचारक अपने साधारण और सुन्दर उपदेश देने वाले नीतिवाक्यों के लिये भो प्रसिद्ध है। क्रियात्मक रूप से उसकी राजनीतिक सफलता का रहस्य उसकी उस नीति का यथार्थ रूप रूप से पालन करना था , जिसके विषय में उसकी अपनी मान्यता सर्वसिद्ध थी।

सुकृत्यं विष्णुगुप्तस्य मित्राप्तिर्भार्गवस्य च ।
बृहस्पतेरविश्वासो नीतिसन्धिस्त्रिधा मतः ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनैतिक क्षेत्र में कौटिल्य की प्रामाणिकता सर्वोपरि है । उसकी प्रसिद्धि प्रमुखरूप से अर्थशास्त्र पर प्रतिष्ठित है ।

16.2.4 राक्षस –

सम्पूर्ण नाटक विरोधी चरित्रों के मध्य विकसित हुआ है । चाणक्य और राक्षस परस्पर विरोधी रूप में चित्रित हैं। एक के चरित्र को हृदयंगम करने के लिये सारे के चरित्र की पृष्टभ्मि अत्यन्त आवश्यक हैं । यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि चरित्रों का विकास भो अंकों में क्रमशः हुआ है । प्रथम अंक में चाणक्य ,द्वितीय अंक में राक्षस ,तृतीय अंक में चन्द्रगुप्त और चतुर्थ अंक में मलयकेतु के चरित्र का विकास हुआ हैं ।

इस नाटक के अन्दर हम प्रथम और तृतीय अंक को छोडकर सभो अंकों में राक्षस को रंगमन्च पर उपस्थित पाते हैं । द्वितीय अंक में राक्षस के चरित्र का विकास राजनीति की पृष्ठभ्मि में हुआ हैं । चतुर्थ अंक में राक्षस को चाणक्य के विरोध में कुटनीति योजनाओ के निर्माण में और चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने की तैयारी में व्यस्त देखते है।

पंचम अंक के अन्दर राक्षस एक अभियुक्त के रूप में हमारे सम्मुख आता हैं । षष्ठ अंक में राक्षस अपने मित्रों और सहायको से दूर ,उद्‌देश्य के प्रति सर्वथा निराश, अतीतकाल की स्मृतियों में डूबा हुआ कुसुमपुर के एक जीर्णोद्यान में दिखाई देता है और अन्तिम अंक में राक्षस के भाग्य का सहसा परिवर्तन होता हैं । और उसे हम मौर्य साम्राज्य के सम्राट् चन्द्रगुप्त के अमात्यपद पर प्रतिष्ठित देखते हैं । इस प्रकार नाटक की सम्पूर्ण कथावस्तु राक्षस के दुर्भाग्य की कहानी हैं । इसके चरित्र में जो आशा –निराशा ,घात–प्रतिघात आदि द्वन्द्वो का चित्र खींचा गया है, उससे मानव–जीवन की अस्थिरता का सहज ही ज्ञान हो जाता है ।

राक्षस के चरित्र में कुछ ऐसे गुण विद्यमान हैं जो उसको राजनीतिक बुद्धि की कठोरता की भ्मि से पृथक् हृदय के कोमल तल पर खड़ा कर देते हैं । उसके हृदय के कोने में छिपकर बैठी हुई भावुकता ही उसकी पराजय का कारण हैं । यह ब्राह्मण वंश का भ्षण, नन्दों का प्रमुख अमात्य है। नन्द साम्राज्य का संचालन करने वाले हैं । इसकी नन्दवंश के प्रति अनन्य भक्ति हैं । नाटककार ने राक्षस को अपने स्वामी नन्द राजाओ के प्रति प्रगाढ़ भक्ति भावना से ओत–प्रोत चित्रित किया हैं । इसकी इस भक्ति को देखकर ही चाणक्य कहता है कि–

"अहो राक्षस्य नन्द–वंशे निरतिशयो भक्तिगुणः। स खलु कस्मिश्चिँदपि जीवति नन्दान्वयावयवे वृषलस्य साचिव्यं ग्राहयितुं न शक्यते। तदभियोगं प्रति निरुद्योगःकथं शक्यः अवस्थापयितुमस्मामिः" (पृष्ठ 31/32)

नन्दभक्ति और राक्षस की महत्वाकांक्षा इन दोनो को एक ही माना जा सकता हैं । कूटनीति का मर्मज्ञ हैं, मेघावी हैं । राक्षस शस्त्रविद्या में निपुण है, सैन्य का संचालन करने की योग्यता रखता है । राक्षस की शूरवीरता इस प्रकार प्रकट हुई है –

यत्रैषा मेघनीला चरित गजघटा राक्षसस्त्र यायात् ।
एतत्पारिप्लवाम्भःप्लुतितुरगबलं वार्यतां राक्षसेन ।

पत्तीनां राक्षसोऽन्तं नयतु बलमिति प्रेषयन्मह्यमाज्ञा
मज्ञासीः प्रीतियोगात्स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्त्रम् ।। (2/14)

इसी प्रकार चन्द्रगुप्त पर आक्रमण करने के लिये जिस व्यूह की रचना की हैं, उसमें अपने आपको उसने अग्रणी रखा हैं –

प्रस्थातव्यंपुरस्तात्खशमगधगणैर्मामनुव्यूह्य सैन्यैः ।। (5/11)

खड्ग़ उसका प्रिय सुहृत् और प्रधानतम शस्त्र हैं । वह अपने मित्र चन्दनदास को फाँसी के तख्ते से छुड़ा लाने के लिये अपनी तलवार पर विश्वास रखता हैं । यथा –

निस्त्रिंनशोऽयं सजलजलदव्योमसंकाशमूर्ति –
र्युद्धश्रद्धापुलकित इव प्राप्तसख्यः करेण।

सत्त्वोत्कषात्समरनिकर्यो दृष्टसारः परैषे
मित्रस्नेहाद्विवशमधुना साहसे मां नियुड्क्ते ।। (6/19)

नाटक के अन्दर जहाँ राक्षस के गुणो का विकास हुआ हैं, वहाँ उसकी मैत्री, भावना, मित्र के प्रति कर्त्तव्य भावना प्रखररूप से हमारे सामने आती हैं ।

मित्र के प्राणो की रक्षा वह अपने आपको बन्धन में डालकर भो करता है । सचमुच वह सच्चा मित्र हैं । राक्षस में जिस मैत्री भावना का कवि ने चित्रण किया हैं वह भारतीय संस्कृति की अपूर्व देन हैं । वह अपने मित्र के लिये आत्मसमर्पण में संकोच नही करता है । चन्दनदास उसका मित्र हैं। सामान्य मित्र नहीं , अपितु चाणक्य के गुप्तचर निपुणक की सम्मति में ''द्वितीयमिव हृदयम् '' (पृष्ठ47) है ।

चाणक्य भो इस बात की पुष्टि इन शब्दों में करता है –

''नूनं सुहृत्तमः । न ह्यानात्मसदृशेषु राक्षसः कलत्रं न्यासीकरिष्यति''

(प्रथम अंक पृष्ठ 47) । और अन्त में कहता है –

त्यजत्यप्रियवत्प्राणान्यथा तस्यायमापदि ।
तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रियाः ।। (1/25)

दूसरे अंक में राक्षस स्वंय अपनी मित्रता के विषय में विराधगुप्त से कहता है कि –

'' तत्किं परितुष्टः कथयसि अपवाहितं राक्षसकलत्रमिति ।
ननु वक्तव्यं संयमितः सपुत्रकलत्रो राक्षस इति '' (पृष्ठ 128)।

राक्षस अपने में और चन्दनदास में कोई भद नहीं देखता है । एक प्राण दो शरीर है । इसलिए अपने मित्र के लिए, मित्र की मैत्री को अमर बनाने के लिए सप्तम अंक में चन्दनदास सें कहता है कि तुम्हारे प्राणो की रक्षा के लिए अपना समर्पण करके मैने –

''स्वार्थ एवानुष्ठितः'' (पृष्ठ 400)

अर्थात् अपना स्वार्थ ही सिद्व किया हैं । चाणक्य से कहता हैं ।

''विष्णुगुप्त ,नमो सर्वकार्यप्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय'' (पृ्ष्ठ 416)

और अपने मित्र के प्राणों की रक्षा के लिए अपने उद्देश्य को, जिसके लिए उसने जीवन पर्यन्त संघर्ष किया – तिलाज्जलि देकर आत्मसमर्पण कर देता ह। और सचमुच इस कसौटी पर राक्षस महान् है । वस्तुतः राक्षस की पराजय का एक प्रमुख कारण चन्दनदास के स्नेह का निर्वाह भो है । वह सिद्धार्थक को भो अपना हितैषी और मित्र समझता है । शकटदास पर उसे सर्वात्मना विश्वास है और इसी विश्वास के कारण वह कहता है कि यदि –

शकटदासेन् लिखितस्ततो मयैव'' (पृष्ठ 318)

उसको उसकी मैत्रीभक्ति और नन्द के प्रति स्वामिभक्ति का पता है परन्तु जब उसके प्रति राक्षस के हृदय में सन्देह का अंकुर उत्पत्र होता है तो यह कहकर –

स्मृतं स्यात्पुत्रदारस्य विस्मृतस्वामिभक्तिना ।
चलेष्वर्थेषु लुब्धेन न यशः स्वनपायिषु ।। (5/14)

अपना समाधान कर लेता है ।

राक्षस का स्वभाव है सब पर विश्वास कर लेना । इसे चारित्रिक दोष और गुण किसी भो रूप में देखा जा सकता है । इसी अपने विश्वास कर लेने वाले स्वभाव के कारण वह किसी भो अनजान नवीन व्यक्ति पर विश्वास कर लेता है, यथा – सिद्धार्थक । उसमें जीवसिद्ध और सिद्धार्थक – इन दो ऐसे प्राणियों पर विश्वास किया है , जो घटनाचक्र को बदल देने की सामर्थ्य रखते हैं । इन्होंने केवल घटनाचक्र को ही प्रभावित नहीं किया अपितु

राक्षस के भाग्य के साथ भो खिलवाड़ किया है । यह प्रत्येक पर विश्वास कर लेना भो उसके पतन का एक कारण है । राक्षस का अपना कोई स्वार्थ नहीं है , वह निःस्वार्थ है । उसकी एकमात्र प्रबल इच्छा है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त से अपने स्वामी नन्दों का बदला ले सके और इसलिये उसने मलयकेतु का आश्रय लिया है , इसलिये वह राजनीति में सतत प्रयत्नशील है। वह कहता है कि –

नेदं विस्मृतभक्तिना न विषयव्यासंगमूढात्मना,
प्राणप्रच्युतिभीरुणा न च मया नात्मप्रतिष्ठार्थिना ।

अत्यर्थं परदास्यमेत्यनिपुणं नीतौ मनो दीयते ,
देवः स्वर्गगतोऽपि शात्रववधेनाराधितः स्यादिति ।। 2/5

उसको अहर्निश एकमात्र यही चिन्ता सताये रखती थी कि नन्दवंश की पुनः राज्य पर प्रतिष्ठा कैसे हो ? इसी चिन्ता मे उसने अपने शरीर की स्वाभाविक साज–सज्जा भो छोड़ दी थी ।

राक्षस शत्रुओ पर विश्वास करता है ।

''वामाक्षिस्पन्दनं सूचयित्वा '' (पृष्ठ 10) ।

वह सर्पदर्शन और क्षपणक के दर्शन – दोनो को अपशकुन का प्रतीक समझता है –

''कथं प्रथममेव सर्पदर्शनम् '' (पृष्ठ 100)

उसे ज्योतिषियों पर विश्वास हैं । आक्रमण के अवसर पर शुभ दिन की उसको प्रतीक्षा है । वह पूछता है –

'' निरूप्यतां तावदस्मत्प्रस्थानदिवसः '' (पृष्ठ258) ।

भाग्य पर उसको अटल विश्वास हैं । सम्पूर्ण नाटक में उसकी भाग्यबत्ता प्रकट होती है । वह तो नन्दवंश का शत्रु ही दैव को मानता हैं , चाणक्य को नहीं ।

''दैवं हि नन्दकुलशत्रुरसौ न विप्रः'' (6/8)

यदा कदा भविष्यत्काल की घटना को सूचित करने वाली दैवीय वाणिक्यों पर भो विश्वास करता है –

''दुरात्मा चाणक्यवटुर्जयत्वतिसंधातुं शक्यः स्यादमात्य इति

वागीश्वरी वामक्षिस्पन्दनेन प्रस्तावगता प्रतिपादयति'' (चतुर्थ अंक पृष्ठ 220) ।

राक्षस के अन्दर उतावलापन भो अधिक है । अतीतकाल की घटना को सुनते सुनते वर्तमान काल में आ जाता है । उसे आत्माविस्मृति हो जाती है और वह कह उठता है कि –

प्राकारं परितः शरासनधरैः क्षिप्रं परिक्रम्यतां
द्वारेषु द्विरदैः प्रतिद्विपघटाभेदक्षमैः स्थीयताम् ।

त्यक्त्वा मृत्युभयं प्रहर्तुमनसः शत्रोर्बले
ते निर्यान्तु मया सहैकमनसो येषामभोष्टं यशः ।। (1/13)

राक्षस को अपने ऊपर विश्वास नहीं हैं । उसमें इच्छाशक्ति की कमी हैं और पराजय की भावना से भरा हुआ हैं।

राक्षस पहले अपने एक निश्चित लक्ष्य को निर्धारित कर लेता हैं और फिर बाद में उसके प्रति अपनी नैतिक भावना को विकसित करता हैं । ऐसा व्यक्ति अपनी सफलता या असफलता को अपने जीवन में अपने उद्देश्य से आंकता हैं । असफलता को वह सहन नहीं कर सकता हैं और इसलिये वह साधनों क प्रति उदासीन हो जाता हैं । चाणक्य को समान इसने भो कूटनीतिक षड्यन्त्री का सहारा लिया हैं । विषकन्या , विष शस्त्र इत्यादि

के द्वारा शत्रु की हत्या करने का प्रयत्न किया हैं। यद्यपि उसे इसमें सफलता नहीं मिली हैं । राक्षस अपने उद्देश्य की प्राप्ति में इतना डूब जाता हैं कि वह अज्ञान में ही षड्यन्त्र करने वाला सिद्ध हो जाता हैं । वह यह अनुभव करने लगता हैं कि अब उसके लिये चाणक्य के जाल से बाहर निकलना कठिन की नहीं ,अपितु असम्भव हैं वह मलयकेतु के व्यवहार के कारण निराश हो जाता हैं और मलयकेतु इतना मूर्ख हैं कि वह समझने लगता हैं कि राक्षस ने चन्द्रगुप्त के साथ सन्धि कर ली है जबकि इसके विपरीत राक्षस की यह विचारधारा है कि –

''इदानीमपि तावदरातिहस्तगतो विनश्येन्न
तु राक्षसश्चन्द्रगुप्तेन सह संदधीत''(पृष्ठ 359) ।

मलयकेतु के इस विश्वास का कारण वह पत्र है , जो चाणक्य प्रथम अंक में सिद्धार्थक के द्वारा शकटदास से लिखवाया है और जिस पर राक्षस की मुद्रा अंकित है और हम देखते है कि नाटक की समाप्ति में आकर राक्षस निःसहाय और निराश्रित हो जाता है । उसकी अतीत और वर्तमानकाल की अवस्था की एक साथ सूचना देने वाला यह श्लोक कितना सुन्दर है –

पौरैरंड्.गुलिभिर्नवेन्दुवदहं निर्दिश्यमानः शनैः
यो राजेव पुरा पुरान्निरगमं राज्ञां सहस्रैर्वृतः ।

भूयः सम्प्रति सोऽहमेव नगरे तत्रैव बन्ध्यश्रमो
जीर्णोद्यानकमेष तस्कर इव त्रासाद्विशामि द्रुतम् ।। 6/10

पृष्ठ अंक में राक्षस के लम्बे स्वागत भाषण में हम इसके चरित्र का समीप से अध्ययन कर सकते है ,जिसमें उसका मानसिक ऊहापोहा का,संघर्ष का चित्र हमारे सामने आता हैं ।यहाँ पर वह अपने जीवन के प्रमुख उद्देश्य को महती निराश में छोड़ देता है । इस प्रकार हम देखते है कि राक्षस शूरवीर योद्धा, परन्तु भ्ल करने वाला ,भावना प्रधान अनुभ्ति के साथ राजनीतिज्ञ के रूप में चित्रित किया गया है ।

16.2.5 अन्य पात्रों की दृष्टि में राक्षस

(1) चाणक्य राक्षस के गुणो की प्रशंसा करता हुआ कहता है –

ऐश्वर्यादनपेतमीश्वरमयं लोकोऽर्थतः सेवते
तं गच्छन्त्यनु ये विपत्तिषु पुनस्ते तत्प्रतिष्ठाशया ।

भर्तुर्ये प्रलयेऽपि पूर्वसुकृतासड्.गेन निःसड्.गया
भक्त्या कार्यधुरं वहन्ति बहवस्ते दुर्लभास्त्वादृशाः ।। (1/14)

राक्षस का अपना व्यक्त्त्वि , अपनी महत्ता कितनी है इसका पता उससे अधिक चाणक्य को है। तभो तो वह राक्षस को जीवित पकडना चाहता है , उसको मरवाना नही चाहता है । भागुरायण को चाणक्य का स्पष्ट निर्देश है कि राक्षस के प्राणो की रक्षा करनी है –

'रक्षणीया राक्षसस्य प्राणा इत्यार्यादेशः (पंचम अंक पृष्ठ 292) ।

चाणक्य भो सोचता है –

बुद्ध्या निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियायाम्
आरण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि। 2/27

(2) तीसरे अंक में चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से प्रश्न किया है कि तुमने राक्षस को कैद क्यों नही कर लिया तो चाणक्य कहता है कि –

स हि भृशमभियुक्तो यद्युपेयाद्विनाशं
ननु वृषल वियोगस्तादृशेनापि पुंसा ।। 3/ 25

चाणक्य किसी भो प्रकार से राक्षस को अपने हाथ जाने नही देना चाहता है । वह यह भो नही चाहता कि राक्षस जीवित रहता हुआ चन्द्रगुप्त के विनाश की योजना बनावे । वह यह भो नही चाहता कि राक्षस मारा जावे । यह है राक्षस का व्यक्तित्व । चाणक्य इस व्यक्तिव को समझता है और इसलिए कहता है कि– ''अत एवास्माकं त्वत्संग्रहे यत्नः '' (पृष्ठ 31) और अन्त में राक्षस को देखकर चाणक्य कहता है कि –'' येन महात्मना –

गुरुभिः कल्पनाक्लेशैर्दीर्घजागरहेतुभिः
चिरमायासिता सेना वृषलस्य मतिश्च मे।। 7/8

3. शकटदास राक्षस को देखकर कहता है –

अक्षीणभक्तिः क्षोणऽपि नन्दे स्वाम्यर्थमुद्वहन्।

पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमे स्थितः।। 2/22

16.2.6 राक्षस और राजनीति –

इस नाटक में राक्षस की राजनीति का कुछ इस – प्रकार प्रयोग हुआ है कि जिसमें वह अपने शस्त्र के प्रयोग से स्वंय ही पराजित हुआ है । राक्षस कुसुमपुर में अपने पीछे अपने परिवार को यह सोचकर छोड आया है कि इस प्रकार कुसुमपुर में रहने वाले उसके अनुयायियों का उत्साह क्षीण होगा।

परन्तु पाटलिपुत्र में उनकी पत्नी की उपस्थिति अभिन्न मित्र चन्दनदास के लिये आपत्ति का कारण हुई है । इसी कारण उसे कुछ क्षणों के लिये मृत्यु की घडियों का भो दर्शन होता है। साथ ही उसकी पत्नी का पटलिपुत्र में रहना ही निपुणक को राक्षस की उस मुद्रा की प्राप्ति करा देता है, जिससे चाणक्य ने एक कूटलेख लिखा है और जिसका प्रयोग उसने राक्षस और मलयकेतु में भद डालने के लिये किया है । चाणक्य इससें सफल होता है । और यह राक्षस की मुद्रा ही उसके पराजय का कारण बनती है। चन्द्रगुप्त को मारने के लिये बडी सभाल कर रखी हुई विषकन्या से चन्द्रगुप्त तो नही मरता , परन्तु उस पर्वतक की मृत्यु हो जाती है जो चन्द्रगुप्त के आधे राज्य का अधिकारी है। राक्षस ने अपने जिन गुप्तचरो को विष और शस्त्रों के द्वारा चन्द्रगुप्त को मारने के लिये नियुक्त किया था, वे उसके गुप्तचर चाणक्य की चतुराई और सतत जागरूकता के कारण उन्ही विष और शस्त्रो से मारे गये । यथा –

कन्या तस्य वधाय या विषमयी गूढं प्रयुक्ता मया
दैवात्पर्वतकस्तया स निहतो यस्तस्य राज्यार्द्धहृत् ।

ये शास्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरेव ते घातिताः
मौर्यस्यैव फलन्ति पश्य विविधश्रेयांसि मन्नीतयः ।। 2/ 16

मलयकेतु ने जो आभ्षण कञ्चुकी के द्वारा राक्षस को पहनने के लिये भिजवाये थे , राक्षस उसमें से एक आभ्षण चन्द्रगुप्त के गुप्तचर सिद्धार्थक को शकटदास के प्राण बचाने के बदले में पारितोषिक के रूप में दे देता है। इसी प्रकार पर्वतेश्वर के आभ्षण उसी की आज्ञा से शकटदास खरीदता है, जिनका प्रयोग चाणक्य ने बडी निपुणता से अपने कूटपत्र में राक्षस के विरोध में किया है। राक्षस न अपने गुप्तचर वैतालिकवेषधारी स्तनकलश से चन्द्रगुप्त और चाणक्य में भद डालने का प्रयास किया है, परन्तु वह इसमें सर्वथा असफल होता है। वह देखता है कि भद्रभट, भागुरायणादि से उसकी सेना सर्वथा घिरी हुई है। वह यह भो समझता है कि ये सभो चाणक्य के गुप्तचर हैं, परन्तु वह किकर्त्तव्यविमूढ है क्योंकि उसके पास इनके विरोध में कोई ठोस प्रमाण नही है और अन्त में हम देखते हैं कि मलयकेतु अपने इन्ही मित्रों से कैद कर लिया जाता है। राक्षस के मुख से चाणक्य के लिये अनायास निकल जाता है कि–

एकमपि नीतिबीजं बहुफलतामेति यस्य तव ।। 1/13।।

और चरम निराशा की स्थिति में अपने लिये कहता है–

मौर्यस्यैव फलन्ति पश्य विविधश्रेयांसि मन्त्रीतयः ।।1/13।।

पाँच म्लेच्छ राजाओं की मृत्यु के समय पञ्चम अंक में राक्षस कहता है –

'' तत्कथं सुहृद्विनाशाय राक्षसश्चेष्टते न रिपुविनाशाय ।

राक्षस की सबसे बडी निर्बलता यह है कि उसकी योजनायें इतनी विशाल है कि उसको यह स्मरण ही नहीं रहता है कि उसने किस गुप्तचर को किस कार्य के लिए नियुक्त किया हुआ है। वह उन गुप्तचरों के नाम भो भ्ल जाता है

'कस्मिन् प्रयोजने ममायं प्रहित इति प्रयोजनानां बाहुल्यान्न खलु अवधारयामि' (चतुर्थ अंक पृष्ठ 221)।

और अन्त में हम देखते हैं कि राक्षस अपने ही कूटनीतिक षड्यन्त्रों के परिणामस्वरूप सर्वथा एकाकी, निराश्रित और निराशाजनक स्थिति में पुनः कुसुमपुर लौटता है । इस बार वह किसी राजनीतिक योजना के निर्माण के लिये नहीं , अपितु अपने मित्र चन्दनदास के प्राणों की रक्षा के निमित्त लौटता है । इस प्रकार राजनीति में निष्णात होते हुये भो राक्षस की पराजय हुई किन्तु पराजित राक्षस भो हमारे सामने महान् है ।

16.2.7 नाटक का प्रतिनायक राक्षस –

राक्षस चाणक्य का प्रतिपक्षी है और इसीलिये प्रतिनायक है । राक्षस के अन्दर सभो गुण विद्यमान हैं जो किसी एक प्रतिनायक में होने चाहियें । दशरूपककार ने प्रतिनायक का लक्षण इस प्रकार किया है –

लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद् व्यसनी रिपु : –।। प्रकाश

यह लक्षण सर्वात्मना घटित नहीं होता है क्योंकि राक्षस लोभो न होकर निःस्वार्थ है । पुनरपि शत्रु होने के कारण उसका प्रतिनायकत्व अखण्ड़ित है –

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटककार ने राक्षस को मौर्य साम्राज्य के शत्रु और नन्द साम्राज्य के पुनरुद्धारक के रूप में चित्रित किया है । सप्तम अंक में जाकर सहसा राक्षस के भाग्य में परिवर्तन हो जाता है और वह मौर्य साम्राज्य के प्रधान मन्त्री के रूप में रंगमञ्च से विदा लेता है । उसकी दुःखद महत्ता सभो सामाजिकों के आकषण का केन्द्र बनाती है ।

16.2.8 चाणक्य और राक्षस का तुलनात्मक चरित्र –

पात्रों के चरित्र–चित्रण के विधान में विशाखदत्त विरोधी का मूल्य खूब अच्छी प्रकार समझते और अनुभव करते हैं । उन्होंने पात्रों को दो–दो के समूह में रखा है और उसका चरित्र –चित्रण तुलना और विरोध के विधान के द्वारा किया है । उनके चरित्र चित्रण की यह महती विशेषता है कि प्रायः उनके पात्रों का चरित्र विरोध की पृष्ठभ्मि में प्रभाव–पूर्ण ढंग से चित्रित हुआ है । पात्रों की विरोधात्मक प्रवृत्तियों में कहीं पर भो ऐसा अनुभव नहीं होता है कि उनकी विरोध प्रवृति नाटक – कार की अपनी बनाई हुई मूर्तिमात्र है । उनका विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है। वे अपने चरित्र का निर्माण करने वाले स्वयं हैं ।

16.2.8.1 (क) चरित्रों में साधर्म्य –

चाणक्य और राक्षस दोनों ही साहसी योजनाओं के निर्माता हैं , जो कभो साधनों की चिन्ता नही करते । दोनों ही निःस्वार्थ हैं कुशल –राजनीतिज्ञ हैं , साहसी हैं और बहुविध साधनों से सम्पन्न हैं । दोनों ही पहले भिन्न–भिन्न उद्देशयों के प्रति अविचल भाव से संलग्न हैं । दोनों ही अपने उद्देशय की पूर्ति करने में तुच्छ से तुच्छ या जघन्य से जघन्य काम करने के लिये तैयार हैं ।

उनकी दृष्टि में साधन का मूल्य नहीं है , साध्य की सफलता है । दोनों का लक्ष्य है कि किसी भो साधन से –अच्छे या बुरे –अपने साध्य का ,अपने लक्ष्य को पूरा किया जाये दोनों ही एक –दूसरे को पराजित करने में प्रशंसा के पात्र हैं । दोनों ने ही अपनी राजनीतिक आकांक्षा को प्राप्त करने के लिए धोखा और हत्या को शस्त्र के रूप प्रयोग किया है । दोनो राजनीतिज्ञों ने एक 'दूसरे को जीतने के लिये एक ही प्रकार की भदनीति का आश्रय लिया है । तथापि जहाँ चाणक्य सफल हो गया है, वहाँ राक्षस को एक दुःखदायी पराजय का मुख दखना पडा है । इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीति के क्षेत्र में, कूटनीतिक षड्यन्त्रों में , साधन की अपरिमितता में और साध्य को ही सर्वात्मना सिद्ध करने में साधन की अपेक्षा करने में दोनों ही समान हैं ।

16.2.8.2 (ख) चरित्रों में वैधर्म्य –

चाणक्य विचारशील है, राक्षस भावुक है। चाणक्य निर्विकार बुद्धिजीवी है राक्षस भावावेश में बह जाता है और यही राक्षस की सबसे बडी दुर्बलता है । चाणक्य दूरदर्शी है और जिस किसी भो कार्य को करता हैं पूरी लगन के साथ करता है । चाणक्य अपने विचार में स्पष्ट है , आत्म–विश्वासी है और अपने कार्य के प्रति सतत जागरूक है । इसके विपरीत राक्षस कोमल प्रकृति का है किन्तु साथ ही पग–पग पर गलती करने वाला है । चाणक्य अपने गुप्त रहस्यों को छिपाने में समर्थ है। यहाँ तक कि कोई भो दो गुप्तचर परस्पर यह नहीं जानते कि वे दोनो चाणक्य के गुप्तचर हैं । किसी पर भो विश्वास न करने वाला है , फलतः उसकी नीति गुप्त है। इसके विपरीत राक्षस खुले ह्रदय का है , मित्रता रखने वाला और उदार है। चाणक्य का व्यक्तित्व इतना कठोर तथा गम्भोर है कि उसके अपने साथ काम करने वाले उसके मित्र तथा अनुयायी उससे ड़रते हैं , जबकि राक्षस अपने मित्रों और अनुयायियों से प्रेम किया जाने वाला है । चाणक्य अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में इतना व्यग्र ओर रत है कि उसकी चन्द्रगुप्त के प्रति किसी प्रकार की कोई कोमल भावना दृष्टिगोचार नही होती है क्योंकि उसके मस्तिष्क में कोमल भावनाओं के लिये कोई स्थान नही है। चाणक्य ह्रदय की अनुभतियों से द्र और परे है। उसके लिये ह्रदय नाम की कोई वस्तु है ही नही। इसके विपरीत राक्षस ने एक कोमल, सहानुभ्तिमय मानवीय ह्रदय पाया है । वह महान् कतव्य की भावना से प्रेरित है । उसकी नन्दों के प्रति अविचल भक्ति है । उसके गुणों से आकृष्ट होकर उसके शत्रु भो उसकी प्रशंसा करते है। यह राक्षस के गुणों का ही प्रभाव है कि चाणक्य को राक्षस को जीतने के लिये अपनी योजनाओं को इतना लम्बा रूप देना पडा और यही उसके गुणों की विशेषता आगे चलकर उसकी पराजय का कारण बनी है । राक्षस अपने गुणों के कारण ही चाणक्य के हाथों में पड गया । राक्षस के सुकोमल गुणों के कारण ही नाटक में करूण रस का परिपाक हो सका है । निःसन्देह राक्षस ने षडयन्त्रों की योजना और उनका संचालन किया है चाणक्य की कूटनीतिक योजना को भग करने के लिये कूटनीतिक चालें भो चली हैं , परन्तु वह केवल षड्यन्त्रों के मध्य ही निवास नही करता है । इसके विपरीत चाणक्य षड्यन्त्रों का पुतला है । षड्यन्त्र उसकी प्रकृति का एक अविभाज्य अंग है । वह षड्यन्त्रों के मध्य रहता है और उसी जगत् में उठता बैठता है ।

राजनीति के अतिरिक्त उसे कुछ सूझता ही नहीं । जहाँ तक युद्ध के कौशल का सम्बन्ध है, चाणक्य शून्य है। राक्षस में यद्ध कौशल कूट–कूट कर भरा हुआ है। चाणक्य राक्षस के इस युद्ध–कौशल को भली–भाँति समझता और जानता है। वह राक्षस की संग्राम और सैन्य शक्ति संचालन के कारण ही उसके साथ युद्ध करने से कतराता है और इसीलिये कूटनीतिक प्रयोगों से वह उसको वश में करने का प्रयत्न करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारी सहानुभ्ति राक्षस की पूर्ण पराजय के कारण उसके साथ होती है। उसकी आशाओं की समाप्ति में, उसके प्रयत्नों की निष्फलता में हमारा करूणाविगलित ह्रदय उसकी ओर उमड़ता है । उसकी अपने मित्र चन्दनदास के प्रति उच्च त्यागमयी भावना हमको उसके सम्मुख नतमस्तक कर देती है , हम श्रद्धा से उसकी ओर झुक जाते हैं किन्तु साथ ही उसकी परवशता पर हमकों दुःख भो होता है। चाणक्य की विजय सामाजिक के

हृदय को प्रभावित करती है, परन्तु राक्षस की महान् तपस्विता, त्याग और नियति अथवा चाणक्य के गुप्तचर द्वारा डाली गई विषम परिस्थिति एक साथ उसके प्रति सम्मान और करूणा के मिश्रत भाव को उत्पन्न करती है। चाणक्य को यदि अपनी बुद्धि पर भरोसा है तो राक्षस को अपनी तलवार पर । एक बुद्धि प्रधान है तो दूसरा पराक्रम प्रधान। चाणक्य धीर प्रकृति का है और राक्षस अधीर प्रकृति का और विस्मरणशील है । चाणक्य की नन्दों के प्रति घोर घृणा है, राक्षस की उनमें अगाध भक्ति है । एक कठोर और किसी के सामने न झुकने वाला है, जबकि दूसरा स्वभाव से कोमल और सज्जन है । चाणक्य दैव पर विश्वास नही करता, वह कट्टर पुरूषार्थवादी है जबकि राक्षस दैव पर आश्रित है, भाग्यवादी है।

जहाँ चाणक्य अपने चतुर गुप्तचर भागुरायण के कपट भद के द्वारा राक्षस और मलयकेतु के मध्य आन्तरिक फूट डालने में सफल हो जाता है , वहाँ राक्षस का प्रयत्न उसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसी साधन के प्रयोग–अर्थात् चाणक्य और चन्द्रगुप्त में भद ड़ालने में –सर्वात्मना असफल हो जाता है। राक्षस का आत्मसमर्पण महान् है । चन्दनदास की मित्रता को अमर बनाने के लिए वह आत्मसमर्पण को भो अपने कर्तव्य के रूप में स्वीकार कर लेता है। राक्षस राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करना चाहता है, अतः उसके प्राप्त न होने पर निराशा का अनुभव करता है । चाणक्य राज्यलक्ष्मी के प्रति उदासीन है, अतःउसके लिये उसका कोई मूल्य नहीं है । राक्षस शीघ्र निराश हो जाता है, चाणक्य के पास निराशा फटकती भो नही । राक्षस अपनी सफलता के लिए अपने सहायकों पर आश्रित है, चाणक्य केवल अपनी बुद्धि पर आश्रित है। इस प्रकार हम देखतें है कि एक ही राजनीतिक धरातल पर रहकर विचरण करने वाले इन दोनों राजनीतिज्ञों में महान् अन्तर है और इस अन्तर को यदि चाणक्य के शब्दों में कहना चाहे तो वह कह सकते हैं कि –

चाणक्यस्त्वमपि च नैव केवलं ते साधर्म्यं मदनुकृतेः प्रधानवैरम् ।। 3/12

अर्थात् वह कहता है कि तुममें और मुझमें अन्तर है। परन्तु हाँ , मेरे साथ तुम्हारी केवल एक बात में समानता है और वह समानता है – प्रमुख राजा के साथ बैर करना। बुद्धिप्रकर्षादि में तो कोई समानता नहीं है। इस प्रकार चाणक्य और राक्षस में जो अन्तर है, वही अन्तर उन दोनों के सहायकों में भो है ।

16.2.9 (4) चन्द्रगुप्त –

मुद्राराक्षस नाटक के अन्दर चन्द्रगुप्त के चरित्र का विकास उस रूप में नहीं हुआ है , जिस रूप में एक मौर्य सम्राट् का होना चाहिए । सम्भवतः इसका कारण विशाखदत्त की यह दृष्टि रही हो कि वह सर्वात्मना अपने इस नाटक के नायक चाणक्य के चरित्र को ही सबके सामने लाना चाहता था । चन्द्रगुप्त तो केवल मात्र चाणक्य के हाथ की कठपुतली है ।

(''चाणक्यमतिपरिगृहीतं चन्द्रगुप्तमवलोक्य ....''द्वितीय अंक पृष्ठ 9),

अतः उसके चरित्र का विकास भो उसी रूप में हुआ है । हम देखते है कि सम्पूर्ण नाटक के अन्दर चन्द्रगुप्त का प्रभाव नगण्य सा है । उसे इस बात का दुःख है कि आर्य चाणक्य की कुटिल नीति के परिणाम स्वरूप उसको अपने पौरूष को दिखाने का अवसर ही नही मिला है। वह सप्तम अंक में कहता है कि –

विनैव युद्धादार्येण जितं दुर्जयं परबलमिति लज्जित एवास्मि ।।
मम हि – फलयोगमवाप्य सायकानां विधियोगेन विपक्षतां गतानाम् ।
न शुचेव भवत्यधोमुखानां निजतूणीशयनव्रतं प्रतुष्ट्यै।।

चन्द्रगुप्त नाटक के अन्दर हमारे सामने प्रमुख रूप से तृतीय अंक में आता है । सप्तम अंक में भो आता है किन्तु यहाँ केवल नाटक के पटाक्षेप के समय ही आया है।

चन्द्रगुप्त एक योग्य और विचारशील शासक है । उसमें विचारो की प्रौढ़ता और यौवन की अवस्था का उत्साह है। कञ्चुकी ने चन्द्रगुप्त का वर्णन इस प्रकार किया है –

सुविश्रब्धैरङ्गैः पथिषु विषमेष्वप्यचलता
चिरं धुर्येणोढा गुरुरपि भुवो यास्य गुरूणा ।

धुरं तामेवोच्चैर्नववयसि वोढुं व्यवसितो ।
मनस्वी दम्यत्वात् स्खलति न च दुःखं वहति च ।। 3/3

अर्थात् वह मनस्वी है, दम्य है । राज्य के भार को वहन करने के लिए तत्पर है । उसकी नवीन अवस्था है । यह सब कुछ होते हुये भो वह किसी प्रकार के दुःख का अनुभव नहीं करता है। वह लोकव्यवहार को जानने वाला है –

अभिज्ञः खल्वसि लोकव्यवहाराणाम् (प्रथम अ़ङ्क पृष्ठ 52) ।

उसके राज्य में किसी प्रकार के छल के लिए अवसर नहीं है । वह विद्रोहियों के प्रति कठोर है । उनको कठोर से कठोर दण्ड देने वाला है –

'' एवमपथ्यकारिषु तीक्ष्णदण्डो राजा '' (प्रथम अङ्क ,पृष्ठ 73) ।

वह प्रकृतिप्रेमी है , तभो तो कौमुदीमहोत्सव के अवसर पर दिशाओं के सौन्दर्य को देखकर उसके ह्रदय में उल्लास की एक लहर उठ गई । वह व्यतमानावलेप है ।

शिष्य चन्द्रगुप्त का अपने गुरू चाणक्य में विश्वास पूर्ण और सर्वात्मना है । सारे नाटक के अन्दर चन्द्रगुप्त के लिये '' वृषल'' शब्द का प्रयोग हुआ है , जिसके आधार पर कतिपय विद्वानों ने उसे शूद्रकुलोत्पन्न माना है । राक्षस भो उसको कुछ इसी प्रकार समझता है क्योंकि वह कहता है कि –

पतिं त्यक्त्वा देवं भुवनपतिमुच्चैरभिजनं
गता छिद्रेण श्रीर्वृषलमविनीतेव वृषली । 6/7

यह भो सम्भव हो सकता है कि राक्षस का चन्द्रगुप्त को ऐसा कहना केवल मात्र आक्रोश हो । वृषल का अर्थ '' राज्ञां वृषः वृषल : –राजराजेश्वरः '' – ऐसा भो होता है । चाणक्य अपने प्रिय शिष्य , युवक राजा चन्द्रगुप्त को अपने प्रिय नाम 'वृषल' कहकर ही बुलाता है – जिसका अर्थ होता है प्रौढ़ बैल । हम देखते हैं कि सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को ''वृषल'' शब्द से ही अभिहित किया है । सम्भवतः इसलिये कञ्चुकी कहता है कि चाणक्य का इसको वृषल कहना सर्वथा उचित है

'' तत्स्थाने खल्वस्य वृषलोऽद्यश्चन्द्रगुप्त इति '' (तृतीय अंक , पृष्ठ 169)

केवल नाटक की समाप्ति पर सप्तम अंक में पृष्ठ 420 पर चाणक्य ने वृषल न कहकर '' भो राजन् चन्द्रगुप्त '' ऐसा 'राजन् ' कहकर सम्बोधन किया है । चन्द्रगुप्त का चाणक्य के प्रति अटूट विश्वास है और इसीलिये वह स्तनकलश के समान किसी भो गुप्तचर से ठगा या धोखा नहीं खा सका । चन्द्रगुप्त पूर्णरूप से अपने गुरू के संरक्षण में है। वह राज्य के उत्तरदायित्व को भो लेने के लिये तैयार नहीं है। वह चाणक्य पर इतना अधिक निभर है कि वह किसी भो कार्य को स्वतन्त्र रूप से करने में सर्वथा असमर्थ है। चन्द्रगुप्त के विषय मे राक्षस की धारणा है कि किसी और राजा के लिए तो अमात्यव्यसन नही हो सकता है किन्तु चन्द्रगुप्त के लिये तो अमात्यव्यसन सबसे बड़ा व्यसन है क्योकि वह सचिवायत्तसिद्धि है । राक्षस को तो यह भो विश्वास है कि चन्द्रगुप्त तो स्वयं ही राज्य कार्य सम्भाल कर हमारी सेना के आक्रमण का प्रतिकार कर सकता है और न ही किसी दूसरे पर अपने राज्य भार को ड़ाल सकता है । उसका तो कहना है कि –

''चन्द्रगुप्तस्तु दुरात्मा नित्यं सचिवायत्तसिद्धावेव स्थितश्चक्षुर्विकल इवाप्रत्यक्षलोकव्यवहार : कथमिव स्वयं प्रतिविधातुं समर्थ : स्यात् ''(पृष्ट 246) ।

राक्षस की दृष्टि में वह '' अदृष्टलोकव्यवहारमन्दधी :'' है ।

नृपोऽपकृष्टः सचिवात्तर्दणः स्तनन्धयोऽत्यन्तशिशु : स्तनादिव ।
अदृष्टलोकव्यवहारमन्दधीर्मुहूर्तमप्युत्सहते न वर्तितुम् ।। 4/14

क्योंकि उसके लिए राज्य भोगविलास के लिए है, कर्तव्य पालने के लिए नही । चाणक्य स्वयं इस बात की पुष्टि करता है कि वह सचिवायत्तसिद्धि है । चन्द्रगुप्त पूछता है कि मै यह जानना चाहता हूँ कि आपने ''कौमुदी–महोत्सव '' का मनाया जाना क्यों रोक दिया ? चाणक्य उत्तर देता है कि –

''सचिवायत्तसिद्धेस्तव किं प्रयोजनान्वेषणेन'' (तृतीय अंक पृष्ठ 1, 6)

अर्थात् तुमको इससे क्या तात्पर्य ? इस विषय में हम ही जानेंगे । यह हमारे अधिकार क्षेत्र की बात है । एक स्थल पर चाणक्य कहता है –

'' वृषल एव केवलं प्रधानप्रकृतिरस्मास्वारोपितराज्यतन्त्रभार : सततमुदास्ते '' (प्रथम अंक, 35 पृष्ठ)।

चन्द्रगुप्त चाणक्य पर सब कुछ छोड़कर निश्चिन्त है । किन्तु वह क्यों निश्चिन्त है इसका उत्तर उसने सप्तम अंक में दिया है –

जगतः किं न विजितं मयति प्रविचिन्त्यताम्
गुरौ षाड्गुण्यचिन्तायामार्ये चार्ये च जाग्रति ।। 7 /13

और ठीक भो है, जिसके गुरू निरन्तर जागरूक है, वह निश्चिन्त होकर राज्य का उपभोग क्यों न करे ? चन्द्रगुप्त की सम्मत्ति है –

विगुणीकृतकार्मुकोऽपि जेतुं भुवि जेतव्यमसौ समर्थ एव ।
स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्यजागरूका :।।7/ 11

यही वे कारण है जिनसे वह स्वभाविक रूप से नाटक की पृष्टभ्मि में पड़ जाता है और इसलिए उसको नाटक का नायक स्वीकार नही किया जा सकता । चन्द्रगुप्त के चरित्र पर प्रकाश डालने वाली उसकी यह स्वगत उक्ति है –

इह विरचयन् साध्वीं शिष्यः क्रियां न निवार्यते ।
त्यजति तु यदा मार्गं मोहात्तदा गुरुरंकुश :

विनयरुचयस्तस्मात्सन्त : सदैव निरंकुशा :
परतरमत : स्वातन्त्रेभ्यो वयं हि पराङ्मुखा : 6/ 7

इससे मालूम पड़ता है कि वह एक सुयोग्य गुरू, सुयोग्य शिष्य है । वह गुरू के नियंत्रण में रहना चाहता है इस नियंत्रण में रहते हए वह प्रत्येक कार्य को सहर्ष स्वीकार कर सकता है–

''अथवा शश्वदार्योपदेशसंस्क्रियमाणमतय : सदैव स्वतन्त्रः वयम् '' (तृतीया अंक पृष्ठ 152)

वह अपने व्यक्तित्व को उभारने वाली स्वतन्त्रता नहीं चाहता । आर्य चाणक्य के कृतक–कलह के आदेश को उसने पाप के समान स्वीकार किया है ।

चन्द्रगुप्त एक क्षण के लिये भो चाणक्य को क्रोध की मुद्रा में नही देखना चाहता । चाणक्य का क्रोध उसको शिव के ताण्ड्व नृत्य का स्मरण दिला देता है । उसका बनावटी क्रोध भो उसको वास्तविक प्रतीत होता है –

'' अये , कथं सत्यमेवार्य : कुपित '' (तृतीय अंक पृष्ठ 202) ।

चाणक्य ने निम्न श्लोक में नन्द से चन्द्रगुप्त की तुलना करते हुये कहा है कि –

उत्सिक्तः कुसचिवदृष्टराज्यभारो
नन्दोऽसौ न भवति चन्द्रगुप्त एष : ।। 2 / 12

अर्थात् नन्द के समान चन्द्रगुप्त न तो उत्सिक्ति है ओर न ही कुसचिवदृष्टराज्यभार है। वह नन्द के समान धन का लोभो नहीं है प्रजा, का अनुरञ्जन ही उसका एकमात्र लक्ष्य है। क्योंकि

'' चन्द्रगुप्तराज्यमिदं न नन्दराज्यम् । नन्दस्यैवार्थरुचेरर्थसम्बधः प्रीतिमुत्पादयति । चन्द्रगुप्तस्य तु भवतामपरिक्लेश एव ''(प्रथम अंक पृष्ठ 63) ।

राज्य के विषय में चन्द्रगुप्त के विचार – राज्य के विषय में चन्द्रगुप्त का विचार है कि –

'' राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम् '' (तृतीय अंक पृष्ठ 150)

अर्थात् यदि कोई राजा राज्यधर्मों का पालन करना चाहता है तो राज्य उसके लिए सुख के स्थान पर दुःख की सृष्टि करने वाला है । क्योंकि –

परार्थानुष्ठाने रहयति नृपं स्वार्थपरता
परित्यक्तस्वार्थो नियतमयथार्थो क्षितिपतिः।

परार्थश्चेत्स्वार्थादभिमततरो हन्त परवान्ः।
परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः।।3/4।।

चन्द्रगुप्त की दृष्टि में राज्यलक्ष्मी दुराध्या है –

''दुराराध्या हि राज्यलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि राजभिः'' (तृतीय अंक,पृष्ठ 151)।

और यही कारण है कि वह इतना अधिक चाणक्य पर निभर करता है कि उसके स्वतन्त्र चरित्र का विकास नाटक के अन्दर कहीं भो देखने में नही आता है। कृतक–कलह के अनन्तर कुछ काल तक उसने स्वतन्त्र रुप से राज्यकार्य का सञ्चालन किया है, किन्तु उस समय में भो चाणक्य का निर्देशन अवश्य रहा होगा – ऐसा सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है ।

नाटक की समाप्ति पर चन्द्रगुप्त को देखकर राक्षस के मुख से अनायास निकल पडता है – अये, अयं चन्द्रगुप्तः। य एष –

बाल एव हि लोकेऽस्मिन् संभावितमहोदयः।
क्रमेणारूढवान् राज्यं यूथैश्वर्यमिव द्विपः ।।7/12।।

सिंहासन पर अधिष्ठित चन्द्रगुप्त को देखकर चाणक्य की यह अनुभ्ति है –

नन्दैर्वियुक्तमनपेक्षितराजराजै –
रध्यासितं च वृषलेन वृषेण राज्ञाम् ।

सिंहासनं सदृशपार्थिवसंगतं च
प्रीतिं परां प्रगुणयन्ति गुणा ममैते ।। 3/18 ।।

अर्थात् नन्द से वियुक्त ,चन्द्रगुप्त से अध्यासित और योग्य राजा से युक्त – ये सभो गुण मिलकर चाणक्य के ह्रदय में एक अनुपम आह्लाद और संतोष को उत्पन्न कर रहे हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चन्द्रगुप्त मौर्य सम्राट् के रूप में और अपनी प्रभशक्ति को अपने प्रधानमन्त्री की मन्त्रशक्ति की संरक्षकता में छोड़कर निश्चिन्त होकर रहने वाले के रूप में चित्रित किया गया है । चाणक्य के प्रति उसकी अगाध श्रद्वा,भक्ति और विश्वास है । नाटक की समाप्ति पर राक्षस के साथ मैत्री हो जाने पर वह अत्यन्त प्रसन्न है । चाणक्य चन्द्रगुप्त को पाकर गर्वित है और चन्द्रगुप्त चाणक्य को पाकर निश्चिन्त है।

16.2.10 मलयकेतु –

मलयकेतु एक पर्वतीय राजकुमार है । इसके पिता का नाम पर्वतक है। इसके पिता की मृत्य विष कन्या के द्वारा हुई थी। मलयकेतु को यह मालूम है कि उसके पिता की मृत्यु में

चाणक्य का हाथ है और राक्षस ने यही सोचकर इस मलयकेतु का आश्रय लिया है कि यह अपने पिता की मृत्यु का बदला अवश्य लेगा । इस प्रकार मलयकेतु का आश्रय लेने से राक्षस के प्रयोजन सिद्धि होते है 1. नन्दवंश के समूल विनाश का बदला और 2. अपने पिता की मृत्यु से कुपित मलयकेतु को नन्द राज्य पर प्रतिष्ठित करना । यह पराक्रमी है, विजिगीषु भो है परन्तु राजनीति के ज्ञान से सर्वथा शून्य है । यह विवेक – शून्य है, अविवेकी है, परिणाम के विषय में बिना सोचे विचार काम करने वाला है, अतः असमीक्ष्यकारी है । ऐसा मालूम पड़ता है कि बुद्धि का उपयोग करना जानता ही नही है । किसी पर भो सन्देह नही करता है हृदय का गम्भोर नही है । उद्धत, अशान्त और धीरोद्धत प्रकृति का है । प्रतिष्ठा करने में कृपण है । यह मनुष्यों को पहिचानने में असमर्थ, अपरिपक्क बुद्धि वाला है । अयोग्य और अहंकारी युवक है।

16.2.10.1 मलयकेतु की विवेकशून्यता –

पंचक अंक के अन्दर मलयकेतु पीछे जाकर भागुरायण की आंखो को बंद कर लेना चाहता है। इससे बढ़कर उसकी और क्या मूर्खता होगी कि उसने अपने नीचे काम करने वाले व्यक्ति को अनुचित महत्त्व दे रखा है इसी बात को यदि दूसरे शब्दों में कह सकते है कि मलयकेतु सर्वथा भागुरायण के वश में हो गया है और भागुरायण के वश में होने का यही परिणाम है कि जैसे–जैसे भागुरायण उसकों राक्षस के विरोध में समझता जाता है , वैसे ही मलयकतु समझता जाता है वह अपनी बुद्धि का प्रयोग बिल्कुल भो नही करता है। मलयकेतु को इस बात पर गर्व व सन्तोष है कि –

''दिष्ट्या न सचिवायत्ततन्त्रोऽस्मि '' (4 अंक पृष्ठ 240)

किन्तु उसकी यह विचारधारा ही उसकी सबसे बड़ी मूर्खता है। उसकी मूर्खता का ही यह परिणाम है कि वह भागुरायण के बहकाने में आ गया है। राक्षस पर अविश्वास करता है और छिपकर वह उसकी बात को सुन लेना चाहता है , जिस बात को वह नही बतायेगा। उससे छिपा लेगा। क्योंकि उसकी विचारधारा है –

सत्वभङ्गभयाद्राज्ञां कथयन्त्यन्यथा पुरः।
अन्यथा विवृतार्थेषु स्वैरालापेषु मन्त्रिणः।। 4/8

राक्षस की सामान्य बात को भो भागुरायण ने अन्यथा करके समझाया है और मयलकेतु इतना मूर्ख है कि वह इस बात को समाझता ही नहीं है । भागुरायण ने मलयकेतु के हृदय मे एक संशय उत्पन्न कर दिया है और इसी का यह परिणाम है कि यह अमात्यराक्षस की अपेक्षा भागुरायण पर अधिक विश्वास करने लगा है ।

यह अयोग्य मलयकेतु एक समय तो अपने पिता के मित्र राक्षस पर विश्वास करता है, किन्तु उसी समय वह अपने शत्रु चाणक्य के गुप्तचर भागुरायण पर विश्वास करता है। राक्षस यद्यपि गुणी है , किन्तु इस विषय में वह बड़ा ही दुभाग्यशाली है कि उसने अपने भाग्य को कुमार मयलकेतु के साथ जोड़ा है । उसका विश्वास राक्षस के प्रति आधे हृदय से है । इसी अविश्वास के कारण हृदय में राक्षस के प्रति दो विकल्प उठ खड़े हुए है – 1. क्या यह मौर्य चन्द्रगुप्त के साथ संधि कर लेगा अथवा 2. मेरे प्रति सत्प्रतिज्ञ होगा । किन्तु इस मलयकेतु की विचार धारा के विपरीत राक्षस की तो यह मान्यता है कि –

यो नष्टानपि बीजनाशमधुना श्शुश्रूषते स्वामिन –
स्तेषां वैरिभिरक्षतः कथमसौ संधास्यते राक्षसः ।

एतावद्भि विवेकशून्यमनसा म्लेच्छेन नालोचितं
दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति ।। 6 / 8

हृदय का गम्भोर न होने के कारण ही वह भागुरायण जैसे चाणक्य के गुप्तचर से ठगा गया है । इसका विश्वास और अविश्वास समान रूप से गलत स्थानों पर है । राक्षस पर पंचम अंक में अभियोग चल रहा है । अभियोग है मलयकेतु के प्रति विश्वास घात और चन्दगुप्त

के साथ सन्धि की चर्चा । इस अभियोग की चरम परिणति उस समय होती है , जबकि पत्र के लेख को मिलाने के लिये शकटदास को न बुलाकर भागुरायण के कहने से केवल मात्र उसके लेख की प्रतिलिपि मंगाई जाती है और मूर्ख मलयकेतु भागुरायण के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है

यदि उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया होता, तो नाटक का अन्त और मलयकेतु का भाग्य कुछ दूसरा ही होता।

पर वह तो भागुरायण के द्वारा राक्षस के विरोध मे इतना भर दिया गया है कि अब उसे राक्षस की प्रत्येक गतिविधि के विरोध में किया जाने वाला षड़यन्त्र दिखाई देता है। मलयकेतु राक्षस की भर्त्सना करता है। उसे भला बुरा कहता है और मलयकेतु की बुद्धि पर आश्चर्य तो तब होता है, जबकि वह क्षपणक कि इस बात पर विश्वास कर लेता है कि चाणक्य ने तो विष कन्या का नाम भो नहीं सुना ? मलयकेतु के राक्षस के प्रति आक्रोश की चरम परिणति इस रूप में व्यक्त हुई है

मित्रं ममेदमिति निर्वृतचितचित्तवृतिं
विश्रम्भतस्त्वयि निवेशितसर्वकार्यम् ।

तातं निपात्यं सह बन्धुजनाश्रुतोयै –
रन्वर्थतोऽपि ननु राक्षस राक्षसोऽसि ।। 5 /6

तुम केवल नाम्ना ही राक्षस नहीं हो अपितु कमणा भो राक्षस हो । इस प्रकार मलयकेतु चाणक्य के गुप्तचरों के जाल में फँस कर राक्षस का घोर अपमान करता है । जिसे अनुभव करके षष्ठ अंक में राक्षस कह उठता है –

'' अहो विवेकशून्यता म्लेच्छस्य '' पृष्ठ357 ।

मलयकेतु राक्षस के इतने ही तिरस्कार से शान्त नही होता अपितु वह तो कहता है कि–

चन्द्रगुप्तस्य विक्रेतुरधिकं लाभमिच्छत : ।
कल्पिता मूल्यमेतेषां क्रूरेण भवता वयम् ।। 5/17

अन्त मे मलयकेतु अपने हृदय की वास्तविक अनुभ्ति को इस रूप में प्रकट करता है–

कन्यां तीव्रविषप्रयोगविषमां कृत्वा कृतघ्न त्वया
विश्रम्भप्रवणः पुरा मम पिता नीतः कथाशेषताम् ।

सम्प्रत्याहितगौरवेण भवता मन्त्राधिकारे रिपौ
प्रारब्धा : प्रलयाय मांसवदहो विक्रेतुमेते वयम् । 5 / 21

राक्षस के लिये इससे बड़ा आघात क्या होगा ? उसके मुख से केवल इतना ही निकला है कि –

''शान्तं पापं शान्तं पापं । नाहं पर्वतेश्वरे विषकन्यां प्रयुक्तवान् ''पंचम अंक पृष्ठ 667

इस प्रकार हम देखते हैं कि चतुर्थ और पंचम अंक में मलयकेतु के चरित्र के वर्णन के साथ साथ मलयकेतु की विवेक शून्यता का भो वर्णन है , जिसने अपने अविवेकिता से राक्षस को तिरस्कार और अपमान ही नही किया अपितु राक्षस के अत्यन्त विश्वासी उन पाँच मलेच्छ राजाओं को भो मृत्यु के घाट उतार दिया जो राक्षस की सेना के केन्द्र बिन्दु थे । इस विवेक शून्यता का भयंकर परिणाम उसकी पराजय में देखा जा सकता है । जिन भागुरायणदि को उसने अपना समझा, अपने निकट किया, उन्होंने उसको कैद कर चाणक्य की सेवा में उपस्थित कर दिया

जो मलयकेतु सुगाड.ग़ प्रासाद में स्थित सिंहासन पर बैठने की अभिलाषा रखता था, जो मौर्य चन्द्रगुप्त को हराकर स्वयं सम्राट् बनना चाहता था , जिस मलयकेतु की यह प्रतिज्ञा थी कि –

वक्षस्ताडनभिन्नरत्नवलयं भ्रष्टोत्तरीयांशुकं
हाहेत्युच्चरितार्तनादकरुणं भूरेणुरूक्षालकम् ।

तादृड़.मातृजनस्य श्शोकजनितं सम्प्रत्यवस्थान्तरं
त्रुटिषु मया विधाय गुरवे देयो निवापाञ्जलिः ।। 4/5

जिसकी आज्ञा को अनुयायी राजागण समुद्र की मर्यादा के समान पालन करते थे , जो आभिरामिक गुणों से युक्त था, जिसकी उत्कृष्टतम सेना थी और जिसको आधार बनाकर राक्षस ने नन्दवंश के विनाश का बदला लेने का स्वप्न देखा था, वही मलयकेतु अपनी अविवेकता से , अपने अस्थिर स्वभाव से राक्षस का केवल अपमान ही नही करता अपितु स्वयं ही शत्रुओं के हाथ से पराजित हो जाता है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि चतुर्थ और पंचम अंक में मयलकेतु के जिस प्रकार के चरित्र का विकास हुआ है , वह राक्षस के आश्रय का उचित पात्र नहीं था । क्रोध से अन्धा होकर वह राक्षस से कहता है कि –

विष्णुगुप्तं च मौर्य च सममप्यागतौ त्वया ।
उन्मूलयितुमीशोऽहं त्रिवर्गमिव दुर्नय : ।। 5 / 22

इस प्रकार अनजाने में ही उसने अपनी तुलना 'दुर्नीति' से की है । संक्षेप में वह कृतघी और कृतवेदी नही है। पुरूषों को वह पहिचानने में सर्वथा असमर्थ है ।

16.2.11(6) चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का तुलनात्मक चरित्र –

पात्रों का चरित्र –चित्रण युगलरूप में किया गया है । जिस प्रकार का चरित्रों में विरोध चाणक्य और राक्षस में दिखाई देता है, वैसा ही विरोधात्मक चरित्र चन्द्रगुप्त और मलयकेतु के मध्य दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि ये दोनों ही क्रमशः चाणक्य और राक्षस के राजनीतिक शतरञ्ज के मोहरें है, तथापि ऐसा कहा जा सकता है कि चन्द्रगुप्त सर्वात्मना चाणक्य के आश्रित है, वह कठपुतली मात्र है , इसके विपरीत मलयकेतु ने अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को राक्षस के हाथों में सर्वात्मना नहीं सौंपा है । वह अपने व्यक्तित्व की रक्षा करना चाहता हुआ भो चाणक्य के गुप्तचरों से घिरा हुआ कर नहीं पाता है । इससे यह निष्कर्ष भो निकाला जा सकता है कि चन्द्रगुप्त को चाणक्य पर पूर्ण विश्वास है और मलयकेतु की वैसी दृढ़ आस्था राक्षस के प्रति नही है । उसका विश्वास आधे ह्रदय से है । मलयकेतु का राक्षस के प्रति यही अविश्वास उसके पतन और पराजय का मूल कारण है । उसका विश्वास और अविश्वास दोनों ही समान रूप से अनुचित स्थान पर हैं,

यथा – राक्षस के प्रति अविश्वास और भागुरायण के प्रति विश्वास । चन्द्रगुप्त नीच जाति से उत्पन्न होता हुआ भो महत्वाकाँक्षी है , उसका चरित्र उज्ज्वल है ,सुशिक्षित है और योग्य है। इसके विपरीत पर्वत निवासी मलयकेतु अयोग्य है, दुरभिमानी है, कमजोर चरित्र का और मिथ्या हठी है । राक्षस का उसके प्रति प्रेम पुत्र के समान है । इस नाटक के पात्र केवल मात्र कल्पना प्रसूत नहीं हैं , और चरित्र की दृष्टि से भो सर्वथा निष्कलंक नहीं है और ऐसा भो नही कहा जा सकता है कि पूर्ण आदर्श चरित्र मूर्ति हैं । चन्द्रगुप्त और मलयकेतु दोनों ही नाटक में अधिक शक्तिशाली पात्र नहीं हैं । चन्द्रगुप्त तो एक प्रकार से निष्क्रिय और कठपुतली मात्र है। उसके अन्दर एक बार के लिए भो अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व को प्रकट करने की इच्छा नहीं होती है ।

इसके विपरीत मलयकेतु राक्षस पर आश्रित भो है और उससे भिन्न अपने अस्तित्व को रखने वाला भो राक्षस उसके लिए केवल मात्र मार्गदृष्टा है ,निर्देशक है । उसका अपना मन्त्री तो

भागुरायण है और इसीलिए वह उसके वश में है । चन्द्रगुप्त आदर्श शिष्य है, जो अपने आचार्य चाणक्य की आज्ञा को बिना किसी ननुनच के स्वीकार कर लेता है । प्रभशक्ति के साथ मन्त्रशक्ति की उपयोगिता को अच्छी प्रकार समझता है । मलयकेतु चन्द्रगुप्त से विपरीत चरित्र वाला है । चन्द्रगुप्त शान्त और गम्भोर है , मलयकेतु अशान्त, उद्धत और उजड्ड़ है ।

चन्द्रगुप्त गुरुभक्त, प्रजानुरञ्जक और दृढ़ पराक्रमी नृपति है , यद्यपि उसका पराक्रम देखा नहीं गया है। इसके सामने अपने उपकारी को न पहिचानने वाला मलयकेतु एक सामान्य अनुभवहीन युवक मात्र है । चन्द्रगुप्त योग्य और विचारशील शासक है, मलयकेतु बुद्धिहीन, अयोग्य और अपरिपक्व बुद्धिवाला है।

यह यौवन की प्रचण्ड़ता से युक्त , स्थितियों के विश्लेषण में असमर्थ ,शीघ्रकारी आर विवेकशून्य है । एक सुशिक्षित है और दूसरा अशिक्षित । चाणक्य को चन्द्रगुप्त की देखभाल करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु राक्षस को मलयकेतु पर अपनी दृष्टि रखती पड़ती है । संक्षेप में, चन्द्रगुप्त द्रव्य है और मलेच्छ मलयकेतु अद्रव्य है । अपने उद्देश्य में निराश राक्षस चन्द्रगुप्त और मलयकेतु के चरित्र का विश्लेषण करता हुआ मन कहता है कि

द्रव्यं जिगीषुमधिगम्य जडात्मनोऽपि
नेतुः यशस्विनि पदे नियतं प्रतिष्ठा ।

अद्रव्यमेत्य भुवि शुद्धनयोऽपि मन्त्री
शीर्णाश्रयः पतति कूलजवृक्षवृत्त्या ।। 7/14

अर्थात् द्रव्य प्राप्ति प्रतिष्ठा कराती है और अद्रव्य प्राप्ति पतन कराती है और इसीलिये हम देखते है कि चन्द्रगुप्त को पाकर चाणक्य को सफलता मिलती है और मलयकेतु का आश्रम लेकर राक्षस अपमानित और तिरस्कृत ही नही होता अपितु एकाँकी, अपने सहायकों से परित्यक्त, अतीत की स्मृतियों में अपने दुःख को भ्ल जाने का प्रयत्न करता हुआ दिखाई देता है । चन्द्रगुप्त कृतवेदी है और मलयकेतु उपकार करने वाले व्यक्ति को भो नहीं पहिचान पाता है । इस प्रकार दोनों के चरित्रों में महान् अन्तर है । दोनों ही चरित्र की दृष्टि से एक–दूसरे के प्रति 36 के अंग के समान है । विशाखदत्त ने इस प्रकार के युगल पात्रों का निर्माण करके अपनी प्रतिभा को प्रदर्शित किया है । इस प्रकार के चरित्रों के चित्रण में वे एक सफल चित्रकार है ।

16.2.12अन्य पात्र –

चाणक्य ,राक्षस , चन्द्रगुप्त और मलयकेतु के अतिरिक्त इस नाटक के अन्दर अन्य गौण किन्तु प्रमुख भ्मिका करने वाले पात्रों का भो चित्रण हुआ है । इनमें से कोई भो निरूद्देश्य चित्रित किया हुआ नहीं दिखाई देता है । प्रत्येक पात्र अपने आप में पूर्ण है और नाटक की दृष्टि से उसके चरित्र का जितना विकास अपेक्षित है , हुआ है। सभो पात्र अच्छे और बुरे का मिश्रण है। विशाखदत्त के ये छोटे पात्र भो सशक्त है । नाटक के चित्रकार की तूलिका ने इनमें भो जीवन रस भरा है । सभो पात्र अपने आप में स्पष्ट और यथार्थ है । नाटक के इन पात्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कोई भो पात्र किसी दूसरे पात्र के कार्य को नहीं कर सकता है । सभो अपने–अपने क्षेत्र में महान् हैं । अपने–अपने कार्य में कुशल और निष्णात ह ।

16.2.12.1 भागुरायण और सिद्धार्थक –

इस नाटक में भागुरायण का नाम हमारे कानों में सबसे पूर्व प्रथम अंग की समाप्ति पर आता है, जहाँ चाणक्य का शिष्य शाङ्गरव सूचना देता है कि भागुरायण भाग गया है।

4 इसी ने मलयकेतु को यह कहकर कि तुम्हारे पिता को चाणक्य ने मरवाया है, कुसुमपुर से भगा दिया है । इसी प्रकार प्रथम अंग के अन्दर ही हमको चाणक्य के स्वागत से इस बात की सूचना मिलती है कि चाणक्य ने सिद्धार्थक को शकटदास का कपट मित्र बनाकर

उसकी गतिविधि को जानने के लिए नियुक्त किया हुआ है । साथ ही इसके विषय में यह भो सूचना मिलती है कि वध्यस्थल से शकटदास को छुडाकर भाग गया है । भागुरायण सेनापति सिंहबल का छोटा भाई है । यह मलयकेतु के पास जाकर उसका अमात्य बन गया है । इसके पश्चात् भागुरायण चतुर्थ और पंचम अंग में हमारे सामने रंगमच पर आता है । सिद्धार्थक शकटदास के प्राणों की रक्षा के कारण राक्षस की नौकरी कर लेता है और पंचम अंक में अपने पूर्ण चरित्र के साथ दिखाई देता है । चाणक्य के कार्य का निर्वाह करने में इनकी अपनी इच्छाशक्ति उतना काम नहीं करती,जितना कि चाणक्य का भय और उसकी आज्ञा का पालन । इन दोनों के व्यक्तित्व को इस प्रकार पृथक्– पृथक् देखा जा सकता है । इनमें से एक भागुरायण अपने कार्य से घृणा करता है और एकान्त में उनका प्रायश्चित करता है और दूसरे सिद्धार्थक का अन्तः करण अपने आप को परिस्थिति के अनुसार ढाल लेने की प्रकृति वाला है । भागुरायण यद्यपिम मलयकेतु का मित्र बनाकर उसे धोखा देना उचित नहीं समझता, तथापि सेवक होने के कारण उसे इच्छा या बुरे का विचार करने का अधिकार ही नहीं है । उसे दुःख है कि उसने धन के लिए अपने शरीर को बेच दिया है , अपनी अन्तःकरण की भावना को कुचल दिया है । वह सोचता है –

'' कष्टमेवमप्यस्मासु स्नेहवान्कुमारो मलयकेतुरतिसंधातव्य इत्यहो दुष्करम् ''।

अथवा–

कुले लज्जायां च स्वयशसि च माने च विमुखः,
शरीरं विक्रीय क्षणिकमपि लोभाद्धनवति।

तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति।। 5/4

राजवंश का होने के कारण उसको अपने स्वाभिमान का सदैव ध्यान रहता है , तथापि चाणक्य की महत्वाकांक्षा को अपना सर्वस्व मानते हुये वह अपनी भावनाओं का हनन करके भो उसकी कार्यसिद्धि करता है । भागुरायण और सिद्धार्थक दोनों ही अपने लक्ष्य को ईमानदारी और विश्वास के साथ निबाहते है । भागुरायण जिस समय अपने कार्य को सम्पन्न कर रहा होता है, पश्चताप का अनुभव करता है क्योकि उसके मन, बुद्धि और ह्दय गम्भोर विश्वासघात के प्रति घृणा करते है ,उस विश्वासघात के प्रति जिसको वह मलयकेतु से करता है । परन्तु दूसरा, सिद्धार्थक अपने अनुकूल कर लेने वाले अन्तःकरण से, अपने स्वामी के आदेश के गुणावगुणों की ओर से सर्वथा अपनी आँखेंबन्द कर लेता है । वह षष्ठ अंक में अपने मित्र सिद्धार्थक से कहता है

''वयस्य,को जीवलोके जीवितुकाम आर्यचाणक्यस्याज्ञप्तिं प्रतिकूलयति। तदेहि। चाण्डालवेषधारिणो भूत्वा चन्दनदासं वध्यस्थानं नयावः'' (पृष्ठ 350) ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों ही अपने कार्य में निपुण हैं न भागुरायण के कार्य को सिद्धार्थक कर सकता है और न ही सिद्धार्थक के काम को भागुरायण ।

16.2.12.2 विराधगुप्त और शकटदास –

विराधगुप्त के दर्शन हमको दूसरे अंक में होते हैं, जहाँ उसने राक्षस को विस्तारपूर्वक कुसुमपुर के समाचार सुनाये हैं । इसके बाद हमकों इसका कुछ पता नहीं चलता है। शकटदास के नाम की चर्चा प्रथम अंक में आती है , जबकि उसको चाणक्य की योजना से सिद्धार्थक वध्यस्थान से भगाकर ले गया है । यहाँ से भागकर हम उसको राक्षस के पास भागकर दूसरे अंक में देखते है इसके नाम की चर्चा पंचम अंक में भो आती है, परन्तु भागुरायण की चालाकी से वह घटनास्थल पर उपस्थित नहीं होता है । इसके प्रति राक्षस के ह्दय में उत्पन्न होने वाला सन्देह सप्तम अंक में चाणक्य के इस वाक्य से –

'शकटदासोऽपि तपस्वी तं तादृशं लेखमजानन्नेव कपटलेखं मया लेखित इति'। (पृष्ठ 406)

दूर होता है और वह संतोष का अनुभव करता हुआ मन ही मन कहता है कि

'' दिष्ट्या शकटदासं प्रत्यपनीतो विकल्पः''   (पृष्ठ 406) ।

विराधगुप्त और शकटदास दोनों ही राक्षस के प्रति गहरी प्रेम भावना के कारण अपने कार्य में प्रवृत्त होते है और उनकी यह आन्तरिक अभिलाषा है कि राक्षस के लिए कुछ काम करें । विराधगुप्त का निर्व्याज कार्य सुन्दर है । शकटदास की सत्यता अनुकरणीय है। विराधगुप्त का गुप्तचरत्व और शकटदास की ईमानदारी अनुभव करने की वस्तु है। राक्षस के सहायक उसकी सहायता अवश्य करते हैं और वह सहायता पूरे ह्दय से भो करते हैं किन्तु उनमें वह कतव्यनिष्ठा और महत्वाकाँक्षा नहीं जो हम चाणक्य के सहायकों में पाते हैं । विराधगुप्त राक्षस का विश्वासपात्र गुप्तचर है किन्तु उसके मन में चाणक्य की विजय और राक्षस की विजय का सन्देह निरन्तर बना रहता है । वह कहता हैः –

कौटिल्यधीरज्जुनिबद्धमूर्ति
मन्ये स्थिरां मौर्यनृपस्य लक्ष्मीम् ।

उपायहस्तैरपि राक्षसेन
निकृष्यमाणामिव लक्षयामि ।।2/2 ।।

'' तदेवमनयोर्बुद्धिशालिनो सुसचिवयोर्विरोधे संशयितेव नन्दकुललक्ष्मीः ''

(द्वितीय अंग. पृष्ठ 88) ।

शकटदास राक्षस का परम विश्वासपात्र लेखाध्यक्ष है किन्तु वह एक ऐसी गलती कर देता है जिससे राक्षस की सारी योजना मिट्टी में मिल जाती है अर्थात् वह सिद्धार्थक के जाल में फंसकर चाणक्य के लिए उस कूटपत्र को लिख देता है।

16.2.12.3 चन्दनदास –

इस नाटक का सबसे अधिक हदय स्पर्श करने वाला यदि किसी का चरित्र है तो वह चन्दनदास है। यह हमारे सामने प्रथम अंक के मध्य में और सप्तम अंक के प्रारम्भ में आता है। यह मणिकार श्रेष्ठी है, जौहरियों का नेता है, और वैश्य जाति का है, इसका राक्षस के प्रति आकर्षण और प्रेम उतना ही गम्भोर और अटल है जितना इन्दुशर्मन का चाणक्य के प्रति। परन्तु प्रणय की ज्वाला रत्नों के व्यापारी , जौहरियों के नेता चन्दन दास के ह्रदय में अपने पूर्ण प्रकाश और कंलक रहित प्रज्वलित होती हैं, जबकि कपट बौद्ध संन्यासी क्षपणक जीवसिद्धि में धोखा और कपट व्यवहार से यह गन्दी और धुंधली दिखाई देती है यह अपने मित्र राक्षस के लिये बडी प्रसन्नता के साथ मृत्यु को अपने गले लगाने के लिए तैयार हो जाता है। इसी एकमात्र राक्षस की कमजोरी का लाभ उठाकर चाणक्य ने उसके द्वारा राक्षस को अपने वश में किया है । चाणक्य यह अनुभव करता है कि राक्षस का यह चन्दनदास श्रेष्ठ मित्र होगा । क्योकि

''न ह्यनात्मसदृशेषु राक्षसः कलत्रं न्यासीकरिष्यति ।'' (पृष्ठ 45)

और इसी मित्रता से चाणक्य ने यह अनुमान लगाया है कि जिस प्रकार यह राक्षस के लिए अपने प्राणों को तृणव्त छोडने के लिए तैयार है,उसी प्रकार राक्षस भो इसके लिए अपने प्राणों छोड देगा।

चाणक्यः– (सहर्षम्) हन्त , लब्ध इदानीं राक्षसः। कुतः ।
त्यजत्यप्रियवत्प्राणान्यथा तस्यायमापदि ।

तथैवास्यापदि प्राणा नूनं तस्यापि न प्रियाः । 1/25
चाणक्य के इस अनुमान की पुष्टि राक्षस के इन शब्दों से भो है

''ननुं वक्तव्यं संयमितः सपुत्रकलत्रो राक्षस इति'' (द्वितीय अंक पृष्ठ 127) ।

राक्षस का अत्यन्त अभिन्न मित्र चन्दनदास अपने और अपने परिवार के जीवन को संकट मे डालकर भो इस बात में दृढ है कि वह राक्षस के परिवार को चाणक्य के सुपुर्द नही करेगा। वह चाणक्य से कहता है कि –

'' आर्य किं मे भयं दर्शयसि । सन्तमपि गेहे अमात्यराक्षसस्य गृहजनं न समर्पयामि,कि पुनरसन्तम्'' (प्रथम अङ्क पृष्ठ 71) । चाणक्य के तीक्ष्ण दण्ड को वह सहर्ष स्वीकार कर लेता है वह कहता है – **'' सज्जोऽस्मि । अनुतिष्ठतु आर्यः आत्मनोऽधिकार सदृशम् '' प्रथम अङ्क (पृष्ठ 73) ।** उसे इस बात का गर्व है कि उसकी मृत्यु उसके अपने मित्र के लिए हो रही है, किसी सामान्य पुरूष के अपराध के कारण नही । इस प्रकार उसको प्राणदण्ड के लिए तैयार किन्तु राक्षस परिवार को न लौटाने के लिए दृढ़ देखकर चाणक्य ने उसकी तुलना शिवि से की है–

सुलभेष्वर्थलाभेषु परसम्वेदने जने ।
क इदं दुष्करं कुर्यादिदानीं शिविना विना ।। 1/24 ।।

चन्दनदास की मित्रभक्ति इस कलियुग में दुष्प्राय है । फांसी के तख्ते पर जाता हुआ अपनी पत्नी से कहता है कि –

'' आर्ये,अयं मित्रकार्येण मे विनाशो न पुनः पुरुषदोषेण । तदलं विषादेन''(सप्तम अंक पृष्ठ 395)। चन्दनदास ने आत्मगत का एक सुन्दर उदाहरण रखा है । तभो आत्मसमर्पण करते हुए राक्षस कहता है –

दुष्कालेऽपि कलावसज्जनरूचौ प्राणैः परं रक्षता ।
नीतं येन यशस्विनातिलघुतामौशीनरीयं यशः ।

बुद्धानापि चेष्टितं सुचरितैः क्लिष्टं विशुद्धात्मना
पूजार्होऽपि यत्कृते तव गतः शत्रुत्वमेषोऽस्मि सः । 7/5

चन्दनदास की महानुभावता और उसकी पत्नि की हार्दिक उच्चता मन में एक उच्चता का आधान करती है। चन्दनदास की पत्नि पति–परायणा है, सहृदया है और सती साध्वी स्त्रियों में आभ्षण तुल्य है, स्वार्थत्यागिनी, कर्तव्य पालने में तत्परा और स्त्रियों के लिए आदर्शभ्त है । चन्दनदास की पत्नि की अपनी विचार –धारा है कि –

''भर्तुश्चरणावनुगच्छन्त्या आत्मानुग्रहो भवति इति' (सप्तम अंक पृष्ठ 365),

और इसीलिये वह लौटना नही चाहती है । उसका पति परलोक जा रहा है , विदेश को नही ।

अतः वह अपना एकमात्र कर्त्तव्य समझती है कि अपने पति के साथ ही अपने प्राणों की भो आहुति दे दे । चन्दनदास के पुत्र के चरित्र की अभिव्यक्ति विशाखदत्त की अपनी कृति है ।

16.2.12.4 निपुणक–

राक्षस की मुद्रा को लाने वाला निपुर्णक यथार्थनामा है । यह हमारे सामने प्रथम अंक में यमपटचर के रूप में आता है । मुद्रिका प्राप्ति में इसका कौशल सराहनीय है ।

16.2.12.5 करभक–

यह राक्षस का गुप्तचर है। प्रथम अंक की समाप्ति पर राक्षस के कहने से हमको पता लगता है कि राक्षस ने इसको कुसुमपुर के समाचार लाने के लिए स्तन–कलश के पास भजा है कि चतुर्थ अंक में यह समाचार लेकर लौटता है । इसी ने आकर यह समाचार दिया है कि चाणक्य और चन्द्रगुप्त में लडाई हो गई है, जिसको आधार बनाकर राक्षस अपनी भावी योजना का निर्माण करता है ।

16.2.13 नाटक का नायक चाणक्य : –

संस्कृत नाटक साहित्य में विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस की अपनी स्वतन्त्र सत्ता हैं । इस नाटक की प्राण शक्ति इतनी प्रबल है कि संस्कृत नाटकों में सबसे अलग रहते हुए भो यह आज तक गौरव के साथ जीवित है । नाटक की अंतरंग कथा के मूल स्रोत हैं –

चाणक्य की कूटनीति और मृतस्वामी नन्द के नाश का प्रतिशोध लेने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील अमात्य राक्षस के कार्य । चाणक्य और राक्षस इन दोनो महान राजनीति विशारदों का बौद्धिक संग्राम ही मुद्राराक्षस की आत्मा हैं।

संस्कृत के समस्त नाटकों को नाम के आधार पर हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं । प्रथम कोटि में वे नाटक आते हैं । जिनका नाम नायका से सम्बन्धित है। द्वितीय श्रेणी में वे नाटक आते हैं जिनका नाम नायिका से जुड़ा हुआ हैं । तीसरा प्रकार उन नाटकों का हैं । जिनका नाम नायक अथवा नायिका के जीवन में घटी किसी ऐसी घटना की ओर इंगित करता दिखाई देता है जो नाटक का केन्द्र बिन्दु होती है इन तीन प्रकारों के अतिरिक्त कुछ नाटक ऐसे भो हैं जिनका नाम नायक–नायिका दोनो से सम्बन्धित है। किन्तु ऐसे नाटक अत्यल्प हैं। अब प्रश्न उठता हैं कि मुद्राराक्षस किस प्रकार का नाटक है । इस प्रश्न के उत्तर के लिए सबसे पहले नाटक के नाम पर ध्यान देना होगा । नाटक का नायक कौन है। इस समस्या के समाधान हेतु नायक के रूप में 3 पात्र हमारे सामने आते हैं।

1. चन्द्रगुप्त 2. चाणक्य 3.राक्षस । विद्वत् समाज म से कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त को नायक मानते हैं । संस्कृत नाट्यशास्त्र की परम्परा भो सम्भवतः चन्द्रगुप्त को ही नायक मानना चाहती है । किन्तु कुछ विद्वान चन्द्रगुप्त और चाणक्य दोनों को ही नायक न मानकर नन्दवंश के अमात्य राक्षस को नाटक के नायक पद पर प्रतिष्ठित करते है। इन विद्वानो में राजस्थान विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग के प्रो. बसन्त जैटली जी प्रमुख हैं । इन्होने अपने विद्वतापूर्ण लेख ''मुद्राराक्षस का नायक एक पुनर्विचार में संस्कृत लक्षण ग्रन्थों की तमाम परम्पराओं और नियमों को किनारे करते हुए राक्षस को नाटक के नायक पद पर अभिषिक्त किया है । इन्होंने राक्षस के नायकत्व के पक्ष में ऐसे अद्भद् और अकाट्य तर्क अपनी प्रतिभा से प्रस्तुत किए हैं कि विद्वान भो इस विषय पर फिर से सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं और यही इस लेख का और इसके लेखक डा. जैटली जी का महत्त्व है किन्तु अधिकांशतः विद्वान चाणक्य को ही नाटक का नायक स्वीकारते हैं इसमें कोई सन्देह भो नही है । कि इस सम्पूर्ण नाटक में चाणक्य एक प्रमुख और असाधारण पात्र है। नाटक के रचयिता विशाखदत्त स्वंय भो चाणक्य के पक्ष में प्रतीत होते हैं। चाणक्य के नायकत्व को सिद्ध करने से पहले हमें नाटक के नामकरण पर भो एक दृष्टीपात् कर लेना चाहिए । विद्वान मुद्राराक्षस की व्युत्पत्ति इस प्रकार निकालते हैं– ''मुद्रयाः ग्रहीतः राक्षसः यस्मिन् तत् मुद्राराक्षसम्'' अर्थात् मुद्रा द्वारा राक्षस को पकड़ने का वर्णन जिस ग्रन्थ में हुआ हैं वह ग्रन्थ मुद्राराक्षसम् है एक अन्य व्युत्पत्ति इस प्रकार भो निकाली गई है – ''मुद्रया ग्रहीतः राक्षसः यस्मिन तत् मुद्राराक्षसम्'' अर्थात् मुद्रा द्वारा पकड़े गये राक्षस को लेकर जिस ग्रन्थ की रचना की गई है वह ग्रन्थ मुद्राराक्षस है । इस प्रकार ये दोनों व्युत्पत्तियाँ भो चाणक्य को ही नाटक का नायक मानने के पक्ष में हैं ।

भारतीय नाटयशास्त्र के अनुसार '' वस्तुनेता रसस्तेषां भदकः '' अर्थात वस्तु, नेता और रस ये तीन तत्त्व रूपक में प्रमुख माने गए हैं । और इन्ही के आधार पर किसी भो रूपक की विद्वानों द्वारा पर्यालोचना की जाती हैं। नाटक के नायक के विषय में भो भारतीय आचार्यो द्वारा विस्तार से विचार किया गया हैं । आचार्य धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक में नायक के भद–प्रभदों का पर्याप्त विवेचन किया है ।

आचार्य धनञ्जय ने अपने ग्रन्थ दशरूपक में नायक की निम्न परिभाषा दी हैं ।

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।

बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः ।
शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।

अर्थात् नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगो को खुश करने वाला, पवित्र मन वाला, बातचीत करने में कुशल ,कुलीन वंश में उत्पन्न ,मन आदि से स्थिर, युवावस्था वाला होता है । वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा ,कला , तथा मान से युक्त होता है। शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है।

चाणक्य वार्तालाप में कुशल है, कुलीन वंश में उत्पन्न है। तथा मन आदि से स्थिर प्रकृति वाला भो हैं । बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला तथा मान का भो उसमें अभाव नही हैं । वह दृढ़ तेजस्वी है तथा शास्त्रों का तो महान ज्ञाता है

किन्तु केवल उपरोक्त गुणों से चाणक्य का नायकत्व सिद्ध नही होता हैं । अपितु इस विवेचन से हम चाणक्य के नायकत्व को सिद्व करने की दिशा में कुछ कदम ही आगे बढ़ पाते हैं ।

क्योंकि इनमें से अधिकांश गुण राक्षस में भो विद्यमान हैं । अतः चाणक्य के नायकत्व की सिद्धि हेतु विस्तृत और गंभोर विवेचन आवश्यक है ।

आचार्य धनञ्जय ने अपने दशरूपक में नायक के भदों का वर्णन करते हुए उसे चार प्रकार का बताया है ।

1.धीर ललित 2. धीरशान्त 3. धीरोद्धात्त 4.धीरोद्धत्त ।

इनमें से प्रथम दो के आधार पर चाणक्य का नायकत्व सिद्व नही हो सकता हैं । अतः अन्तिम दो पर संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है।

आचार्य धनञ्जय ने दशरूपक के धीरोदात्त नायक की परिभाषा निम्न प्रकार दी हैं ।

महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ।। द्वितीय प्रकाश / (4)

अर्थात् धीरोदात्त नायक महासत्व, अत्यन्त गम्भोर, क्षमाशील, अविकत्थन ,स्थिर , निगूढ, अहंकार वाला तथा दृढ़व्रत् होता है ।

उपरोक्त गुणों में से चाणक्य महासत्व है, उसका अन्तःकरण कभो उद्विग्न नही होता है। वह अत्यन्त गम्भोर भो है । वह स्थिर प्रकृति वाला है । साथ ही जिस संकल्प को कर लेता है । उसे अवश्यमेव पूरा करता ही है । नन्द वंश का विनाश कर देना उसके दृढ़व्रति होने का परिचायक ही है ।

कुछ विद्वान चाणक्य पर विकत्थन (प्रशंसा या आत्म–शलाघा) का दोष मण्ड़ित करते हैं । वे कहते हैं कि चाणक्य ने नाटक में स्थान–स्थान पर अपनी स्वंय की अनेक बार प्रशंसा की है। यथा–

आस्वादित द्विरदशोणित शोणशोभां
संध्यारुणामिवकलां शशलाञ्छनस्य ।।

जृम्भाविदारितमुखस्य मुखात्स्ङ्खुरन्ती
को हर्तुमिच्छति हरेः परिभूयः दंष्ट्राम् ।। (1/8)

अर्थात् कौन है जो सोकर उठे, जंभाई लेते शेर को दबाकर उसके मुख से उन चमकती दाड़ो को उखाड़ लेना चाहता है। जिनमें मार कर पिये गए गजराज के रक्त की लाली झलक रही है और जो संध्या की लाली से लाल चन्द्रकला सी दिखाई दे रही हैं ।

किन्तु चाणक्य पर विकत्थन का दोष मण्डित करने से पूर्व हमें मुद्राराक्षस नाटक की प्रकृति पर भो विचार कर लेना चाहिए । मुद्राराक्षस एक वीर रस प्रधान नाटक है । ऐसे में चाणक्य की ये दर्पोक्तियाँ उसके लिए दूषण नही अपितु भ्षण का ही कार्य करती हैं ।

साथ ही चाणक्य क्षमाशील भो है । वह बिना वजह किसी के प्राण हरण में विश्वास नही करता है। इसी कारण वह नाटक के अन्त में राक्षस के परम मित्र चन्दनदास को छोड़ देता है ।

ये तो है – धीरोदात्त की चर्चा, अब धीरोद्धत्त पर भो दृष्टि निक्षेप करते हैं

धनञ्जय धीरोद्धत्त नायक का परिचय निम्न श्लोक में देते है ।

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः ।।

अर्थात् धीरोद्धत नायक घमण्ड और ईर्ष्या से भरा हुआ, माया और कपट से युक्त घमण्ड़ी, चन्चल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघी होता है । प्रो. जैटली जी ने अपने लेख में चाणक्य को घमण्डी और उन्मत्त बताया है और अपने मत के समर्थन में वे कहते हैं कि चाणक्य चन्द्रगुप्त को वृषल शब्द से संबोधित करता है जो कि अमात्य की अपने राजा के प्रति अशिष्टता है । किन्तु चाणक्य चन्द्रगुप्त का अमात्य होने से पहले उसका गुरू भो था या यों कहें कि वह चन्द्रगुप्त का सर्वस्व था । उसने पत्थर के टुकडें को तराश कर हीरा बनाया था। अगर चन्द्रगुप्त को चाणक्य का साथ नही मिलता तो राजा बनना तो दूर उसका अस्तित्व भो इतिहास में शेष नही रहता। अतः एक समर्थ गुरू अपने शिष्य को कैसे भो संबोधित कर सकता है ।

द्वितीय वृषल शब्द का शाब्दिक अर्थ है – 'सांड' अथवा 'बैल' । जो कि भारतीय संस्कृति में प्रारम्भ से ही शक्ति का प्रतीक रहा है । अतः वृषल शब्द चन्द्रगुप्त की शक्ति को उजागर करता है न कि इस शब्द से उसका अपमान होता है ।

तृतीय प्रो.जेटली जी व कुछ अन्य विद्वान चाणक्य पर विकत्थन का दोषारोपण करते हैं। इनका कहना है कि वह सम्पूर्ण नाटक में आत्मश्लाघा में लगा रहा है व अपनी स्वंय की प्रशंसा स्वंय हो करता रहा है ।

ये याताः किमपि प्रधार्य्य हृदये पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठन्ति भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।

एका केवलमर्थसाधनविधौ सेना शतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम ।। 1/16

किन्तु यदि वह अपनी बुद्धि की प्रशंसा करता है । तो इसमें कुछ गलत भो नही है क्योकि एक ऐसा व्यक्ति जो शक्ल और सूरत से कुरूप था, जिसके पास कोई सेना आदि नही थी । उस व्यक्ति ने केवल अपनी बुद्धि से उस नन्द वंश को जड सहित नष्ट कर दिया जिसकी सेना के ड़र से विश्व विजेता सिकन्दर की सेना ने भो गंगा नदी पार करने से मना कर दिया था । तथ्य यह भो है कि वह समय कोई राम या कृष्ण का तो था नही और ना ही वह कोई सतयुग था कि नायक अपनी प्रशंसा नही करे।

फिर नन्द भो धर्मात्मा और प्रजापालक नही थे। वे खुद आडम्बर पसन्द और विलासी शासक थे यदि चाणक्य उनको नष्ट करने वाली अपनी बुद्धि को सराहता है तो यह कोई बुराई नही है और ना यह विकत्थन ही है ।

चतुर्थ यदि चाणक्य ने नन्दों और राक्षस के साथ मायावी और कपटपूर्ण व्यवहार किया तो इसमें भो कुछ गलत नही था । प्रथम तो वह युग राजनीति प्रधान था और प्रत्येक व्यक्ति येन केन प्रकारेण अपना अस्तित्व बचाए रखना चाहता था चाहे वह राजा हो अथवा सामान्य व्यक्ति । द्वितीय नन्द कोई संत व महापुरूष नही थे कि वे खुद तो माया और कपट का

सहारा लें और अन्य व्यक्ति उनसे उचित आचरण करे । तृतीय राक्षस स्वंय भो चाणक्य और चन्द्रगुप्त में कपटपूर्वक कलह करवाना चाहता था । यह अलग बात है कि चाणक्य ने उसकी योजना को पहले से ही भाप कर उसे उल्टा अपने ही जाल में फँसा लिया और वह अपनी योजना में सफल नहीं हो पाया । अगर चाणक्य कपट और माया का सहारा नही लेता तो राक्षस उसे माया और कपट से समाप्त करवा देता।

अतः उसका यह आचरण निन्दनीय नही कहा जायेगा । फिर राजनोति में तो कपट और मायावी आचरण राजनीति का एक प्रमुख स्तम्भ है ।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है । कि चाणक्य में धीरोदात्त और धीरोद्धत दोनो नायकों के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

अतः वह एक विलक्षण कोटि का नायक है। नाटककार भो स्वंय चाणक्य को ही नायक मानने के पक्ष में प्रतीत होता है नाटक में स्थान–स्थान पर ऐसे संकेत मिलते हैं जो चाणक्य को नायक मानने के पक्ष को पुष्ट करते हैं ।

जैसे–

जयति जयनकार्यं यावत्कृत्वा च सर्वं
प्रतिहतपरपक्षा आर्यचाणक्यनीतिः'' (6/1)

यद्यपि राक्षस को वश में कर लेने से चन्द्रगुप्त को अमात्य लाभ हुआ है किन्तु चाणक्य को भो फलागम का विशेष लाभ हुआ है । वस्तुतः चाणक्य की वास्तविक प्रतिज्ञापूर्ति तो इसी स्थान पर आकर होती है उसका लक्ष्य था चन्द्रगुप्त के लिए निष्कण्टक राज्य की स्थापना और राक्षस को मन्त्री बनाना । वह अपने इस उद्देश मे सर्वात्मना सफल भो हुआ है । विशाखदत्त ने किसी प्रख्यात वंश में उत्पन्न व्यक्ति अथवा सम्राट को प्राचीन नाट्य परम्परा के अनुसार नाटक का नायक ना बनाकर राजनीति में अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि, अर्थशास्त्र के महारथी तथा सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरू चाणक्य को अपनी रचना का नाम बनाकर एक दिव्य प्रतिभा का उदाहरण प्रस्तुत किया है।

''मुद्रया गृहीतो राक्षसो यस्मिन् तन्मुद्राराक्षसं नाम नाट्कम्''

इस मुद्रा से अपनी राजनीति का प्रवर्तन करने वाला चाणक्य ही है, अतः उसी का नायकत्व उचित प्रतीत होता है । इससे बढ़कर चाणक्य के नायकत्व को सिद्ध करने वाला और क्या प्रमाण होगा कि नाटक की समाप्ति पर चाणक्य स्वंय आदेश देता है ।

बिना वाहन हस्तिभ्यो मुच्यतां सर्वबन्धनम्।
माया पूर्ण प्रतिज्ञेन केवलं बध्यते शिखा।।

अर्थात् घोडों और हाथियों को छोडकर सभो के बन्धन खोल दो पूर्ण प्रतिज्ञा वाले मेरे द्वारा केवल अपनी शिखा बांधी जाती है ।

अन्त में हम कह सकते हैं कि नाटककार ने चाणक्य को नन्द साम्राज्य के संहारक और मौर्य सम्राज्य के प्रतिष्ठापक के रूप में चि्रित किया है । उसने चाणक्य के चरित्र का जो चित्रण किया हैं। वह उसकी नाट्य साहित्य को एक बहुत बडी देन है ।

16.3 पारिभाषिक शब्दावली

मुद्राराक्षस – नाटक के ऐतिहासिक पात्रों में प्रमुखतम पात्र चाणक्य है ।यह चणक का पुत्र है। उसके पूर्ववर्तियों में एक 'कुटिल' हुआ था , जिसके आधार पर उसका नाम कौटिल्य हुआ ऐसी कुछ विद्वानों के द्वारा व्याख्या की जा सकती है ।

अर्थात् जो कुटं–कुटपूर्ण धान्यं लाति गृहमिति इति कुटलः अर्थात कुट का अर्थ है घडा अर्थात जो घटपरिमित धान्य का संग्रह करता है । अथवा कुट का अर्थ परिवार भी होता है । इस परिवार के अर्थ में ग्वेद मे कूट शब्द का प्रयोग हुआ है । अर्थात् जो केवल अपने परिवार की आजीविका चलाने मात्र धन का संचय करता है इस प्रकार की व्याख्या करने पर चाणक्य के पिता की त्याग भावना व्यक्त होती है ।

दशरूपककार – ने प्रतिनायक का लक्षण इस प्रकार किया है –
लुब्धो धीरोद्धतः स्तब्धः पापकृद् व्यसनी रिपु : –।। प्रकाश
यह लक्षण सर्वात्मना घटित नहीं होता है क्योंकि राक्षस लोभी न होकर निःस्वार्थ है ।
मलयकेतु – एक पर्वतीय राजकुमार है । इसके पिता का नाम पर्वतक है। इसके पिता की मृत्य विष कन्या के द्वारा हुई थी।
नायक – अर्थात् नायक विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रिय बोलने वाला, लोगो को खुश करने वाला, पवित्र मन वाला, बातचीत करने में कुशल ,कुलीन वंश में उत्पन्न ,मन आदि से स्थिर, युवावस्था वाला होता है । वह बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा ,कला , तथा मान से युक्त होता है। शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञाता तथा धार्मिक होता है।
धीरोदात्त – अर्थात् धीरोदात्त नायक महासत्व, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, अविकत्थन ,स्थिर , निगूढ, अहंकार वाला तथा दृढव्रत् होता है ।

16.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. पठित ईकाई के आधार पर चाणक्य का चरित्र चित्रण कीजिए ।
2. राक्षस का चरित्र चित्रण कीजिए ।
3. पठित अंशो के आधार पर चन्द्रगुप्त का चरित्र चित्रण कीजिए ।
4. चाणक्य और उसकी राजनीति पर प्रकाश डालिए ।
5. नन्दवंश के विनाशक चाणक्य को नाटक का नायक सिद्ध करते हुए उसके पक्ष में तर्क दीजिए।
6. राक्षस नन्दवंश का परम हितैषी, एक श्रेष्ठ मित्र तथा एक श्रेष्ठ शत्रु था तर्कों द्वारा स्पष्ट करो।
7. मलयकेतु का चरित्र चित्रण कीजिए ।
8. चन्द्रगुप्त और मलयकेतु का तुलनात्मक चरित्र चित्रण कीजिए ।
9. चाणक्य और राक्षस का तुलनात्मक चरित्र चित्रण कीजिए ।
10. भागुरायण और सिद्धार्थक के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
11. विराधगुप्त और शकटदास के चरित्र का वर्णन करो ।
12. चन्द्रनदास का चरित्र चित्रण कीजिए ।

प्रश्नों के उत्तर

1. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.1 का अध्ययन करें ।
2. इस प्रश्न के उत्तर क लिये इकाई 16.2.4 का अध्ययन करें ।
3. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.9 का अध्ययन करें ।
4. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.3 का अध्ययन करें ।
5. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.13 का अध्ययन करें ।
6. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.4 का अध्ययन करें ।
7. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.10 का अध्ययन करें ।
8. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.11 का अध्ययन करें ।
9. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.8 का अध्ययन करें ।
10. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.12.1 का अध्ययन करें ।
11. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.12.2 का अध्ययन करें ।
12. इस प्रश्न के उत्तर के लिये इकाई 16.2.12.3 का अध्ययन करें ।

16.5 सारांश

इस प्रकार उपरोक्त इकाई का अध्ययन करने के पश्चात हमें यह ज्ञात हो जाता हैं कि मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य जगत में अपने चरित्र चित्रण के कारण अद्वितीय है । इसके पात्रों को हम युगल रूप में पाते हैं । दो पात्रों के पारस्परिक विरोध और संघर्ष में प्रत्येक पात्र के चरित्र का विकास हुआ है । युग्म रूप में पात्र इस प्रकार चित्रित हैं ।
1. कूटनीति में निपुण चाणक्य और राक्षस 2. एक दूसरे से विरोधि गुणों वाले एक दूसरे के शत्रु राजा चन्द्रगुप्त और मलयकेतु तथा 3. भागुरायण और सिद्धार्थक । चाणक्य को

नन्दवंशीय राजाओं के प्रति एक प्रबल हिंसावृत्ति से परिपूर्ण दिखाया गया है । उनके प्रति उसकी घृणा स्पष्ट है । इसके विपरीत राक्षस नन्दवंश के पक्ष में है । उसकी नन्द वंश की प्रति भक्ति उतनी ही दृढ और अविचल है जितनी चाणक्य की नन्दवंश के प्रति घृणा में है। हम देखते हैं कि नाटकार ने ऐसे चरित्रों की उद्भावना की है जो साधारण होते हुए भी असाधरण हैं देश काल से परिछिन्न होते हुए भी अपरिछिन्न हैं, नाटकीय होते हुए भी वास्तविक हैं और यथार्थ होते हुए भी आदर्श हैं चाणक्य के समान नायक और राक्षस के समान प्रतिनायक कामिनी और कान्चन के लिए आपस में नही झगड़ते हैं अपितु उनका झगड़ा तो महान आदर्शों के लिए होता है। चाणक्य का आदर्श हैं –

बुद्धया निगृह्य वृषलस्य कृते क्रियाया –
मारण्यकं गजमिव प्रगुणी करोमि ।।

अर्थात जंगली हाथी के समान राक्षस को बुद्धि से वश में करके चन्द्रगुप्त के लिए अमात्य कार्य में नियुक्त करता हूँ ।

और राक्षस का आदर्श है '' देवः ' स्वर्गगतोऽपि शास्त्रवधेनाराधितः स्यादिति '' दोनो ही निष्काम और निरीह है । दोनो के लिए जय–पराजय का महत्त्व उतना नही है जितना कि कर्त्तव्य निर्वाह का है । इस प्रकार हम देखते हैं कि विशाखदत्त का चरित्र चित्रण इस नाटक की केन्द्र बिन्दु का दृढ आधार है । सभी प्रकार के नाटकीय पात्रों ने अभिनय का निर्वाह सफलतापूर्वक किया हैं ।

16.6 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुद्राराक्षसम् – डॉ. निरूपण विद्यालंकार, साहित्य भंडार, मेरठ, 2000.
2. मुद्राराक्षसम्, श्री निरञ्जन मिश्र, हंसा प्रकाशन जयपुर, 1999.
3. संस्कृत कविदर्शन डॉ. भोलाशंकर व्यास, चौखम्बा, वाराणसी, 2003.
4. संस्कृत महाकवि और काव्य, रामजी उपाध्याय, रामगोपाल मिश्र, रामनारायण लाल बेनीमाधव, इलाहबाद, 1958.
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1953.

इकाई – 17

मुद्राराक्षस की प्रमुख सूक्तियाँ

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप जान सकेंगे कि महाकवि विशाखादत्त प्रणीत नाटक मुद्राराक्षस में जनकल्याणार्थ सूक्तियों का प्रयोग किस प्रकार किया गया है।

17.1 प्रस्तावना

महाकवि विशाखादत्त विरचित मुद्राराक्षस नामक नाटक वीर रस प्रधान नाटक है। इस नाटक में स्थान–स्थान पर उपयोगी सूक्तियाँ वर्णित है। छोटे से कथन में कवि ने गागर में सागर भर दिया है।

17.2 प्रथम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. अत्यादरः शङ्कनीयः।
2. अनुभ्यतां चिरं विचित्रो राजप्रसादः
3. अनुचितः उपचारो ह्रदयस्य परिभवादपि दुःखं–उत्पादयति।
4. कीदृशस्तृणानामग्निना सहविरोधः।
5. दिष्ट्या मित्रकार्येण मे विनाशो न पुरुष दोषेण।
6. प्रज्ञा विक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भृतये।
   ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे सम्पत्सु आपत्सु च।।
7. न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम्।

8. शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः।

9. श्रोत्रियाक्षराणि प्रयत्नलिखितानि अपिनियतमस्फुटानि भवन्ति।

17.2.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

प्रस्तुत सूक्ति महाकवि विशाखादत्त विरचित सुप्रसिद्ध नाटक ''मुद्राराक्षस'' के प्रथम अंक से उद्धृत हैं। संस्कृत साहित्य के नाटकों में वीर रस प्रधान नाटक अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं होते। वीर रस प्रधान नाटकों में युद्ध का वर्णन भो आवश्यक रूप से होता है। परन्तु मुद्राराक्षस एक ऐसा नाटक है जो वीर रस प्रधान होते हुए भो युद्धरहित है। प्रस्तुत नाटक में मूलरूप से चाणक्य की कूटनीति वर्णित की गई है।

1. अत्यादरः शङ्कनीयः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य मणिकार श्रेष्ठी (सेठ) चन्दनदास को देखना चाहता है तब चाणक्य का शिष्य चन्दनदास को चाणक्य के समीप ले जाता है। उस समय चन्दनदास मन ही मन में सोचता है कि यदि किसी को सहसा प्रधानमन्त्री द्वारा बुला लिया जाए तो वह डर जाता है, मुझ तो और भो डर लग रहा है क्योंकि मैंने तो अपने घर में ही राक्षस परिवार को शरण दे रखी है। इस प्रकार वह सोचता हुआ चाणक्य के पास पहुंचता है। पहुंचने पर चाणक्य उसका उचित आसनादि प्रदान कर स्वागत करता है। चाणक्य के सद्व्यवहार को देखकर चन्दरदास पुनः मन में सोचता ह कि अत्यधिक उपचार (आदर) शंकनीय होता है। अतएव महाकवि विशाखादत्त का कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि – ''अत्यादरो शंकनीयः''

इस सूक्ष्म वाक्य में महाकवि विशाखादत्त की अर्थगौरवक्षमता स्पष्ट रूप से सिद्ध हो रही है। उनकी दृष्टि चन्दनदास की मानसिक स्थिति के प्रति पूर्णतः सुस्पष्ट है।

2. अनुभूयतां चिरं विचित्रो राजप्रसादः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य मणिकार श्रेष्ठी (सेठ) चन्दनदास को बुलवाता है। चाणक्य एवं चन्दनदास में परस्पर वार्तालाप होता है। चाणक्य चन्दनदास पर आरोप लगाता है कि तुमने अपने घर राक्षस के परिवार को छिपा रखा ह। अतः तुम उस परिवार को हमारे सुपुर्द कर दो। चन्दनदास स्पष्ट शब्दों में कहता है कि मेरे घर में राक्षस परिवार है ही नहीं, अतः मैं कैसे उसे आपको सौंप दूं। उसी समय नेपथ्य में कोलाहल होता है कि राजद्रोही क्षपणक जीवसिद्धि को राजद्रोही होने के कारण तिरस्कार के साथ देश स निर्वासित किया जा रहा है। ऐसा सुनकर चाणक्य पुनः चन्दनदास से कहता है कि श्रेष्ठी चन्दनदास, यह राज चन्द्रगुप्त विरोधियों को अति कठोर दण्ड देता है। अतः तुम हितकारी मित्र की बात (मेरी बात) को मानते हुए राक्षस के परिवार को सौंप दो तथा अपना शेष जीवन आराम से व्यतीत करो। अतः सत्य ही कहा गया है कि– अनुभ्यतां चिरं विचित्रो राजप्रसादः

इस प्रकार चाणक्य द्वारा चन्दनदास का प्रलोभन दिया गया है। प्रस्तुत सूक्ति में कवि ने चाणक्य की कूटनीति को अत्यधिक सूक्ष्म शब्दों में वर्णित किया है।

3. अनुचितः उपचारो हृदयस्य परिभवादपि दुःखमुत्पादयति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य मणिकार श्रेष्ठी (सेठ) चन्दनदास को बुलवाता है। जब चाणक्य का शिष्य चन्दनदास को राक्षस के समीप लाता है। उस समय वह अपने मन में सोचता है कि यदि अचानक प्रधानमंत्री बुलाए तभो भय लगता है फिर मैंने तो अपने मित्र राक्षस को अपने घर छिपा रखा ह। अतः मुझे अत्यधिक भय लग रहा है। ऐसा सोचता हुआ वह चाणक्य के समीप पहुंचता है तब चाणक्य उसे आसन पर बैठने का कहता है। ऐसा होने पर चन्दनदास निवेदन करता है कि मैं तो भ्मि पर ही बैठ जाउंगा क्योंकि अनुपयुक्त सम्मान तो अपमान से भो अधिक हृदय में दुःख को ही उत्पन्न करता है।

अतः चन्दनदास द्वारा यह सत्य कथन ही कहा गया है कि– ''अनुचितः उपचारो ह्रदयस्य परिभवादपि दुःखमुत्पादयति।''

प्रस्तुत वाक्य में कवि ने चन्दनदास की मनःस्थिति का रोचक व शिक्षाप्रद वर्णन किया है।

4. कीदृशस्तृणानामग्निना सह विरोधः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य मणिकार नगर सेठ चन्दनदास को बुलवाता है। चाणक्य का शिष्य उसे अपने साथ लाकर चाणक्य के समक्ष ले जाता है। चाणक्य उसे आसनादि प्रदान कर उसका स्वागत करता है। अपना आदर होता देखकर चन्दनदास मन ही मन शंकित हो जाता है। चाणक्य व चन्दनदास परस्पर वार्तालाप करते हैं। वार्तालाप में ही जब चाणक्य द्वारा यह कहा जाता है कि यदि प्रजावर्ग राजा चन्द्रगुप्त से प्रसन्न है तो राजा भो बदले में प्रिय की आशा करता हैं वह यह भो चाहते हैं कि आप जैसे प्रजाजन को किसी प्रकार का क्लेश न हो। अतएव आपको ऐसा व्यवहार करना चाहिए जो राजा के अनुकूल प्रवृत्तियों से युक्त हो। ऐसा सुनने पर चन्दनदास कहता है कि कौन दुर्भाग्यशाली राजा के विरूद्ध है। चाणक्य ने प्रत्युत्तर में कहा कि प्रथमतः तो आप ही हैं। ऐसा सुनने के उपरान्त चंदनदास अपने कानों पर हाथ रखते हुए कहता है कि पाप शान्त हो क्योंकि तिनकों का अग्नि के साथ कैसा विरोध? ''कीदृशस्तृणानमग्निना सह विरोधः''

सत्य ही कहा गया है क्योंकि तिनका उसी समय तक सुरक्षित है जब तक उसका साथ अग्नि के साथ नहीं होता। यदि तिनका अग्नि के सम्पर्क में आएगा तो भस्म ही हो जाएगा। अतः राजा चन्द्रगुप्त के साथ मैं विरोध कैसे रख सकता हूँ।

प्रस्तुत सूक्ष्म वाक्य में महाकवि विशाखादत्त की लेखनी का चमत्कार एवं अर्थगौरव क्षमता दर्शनीय है।

5. दिष्ट्या मित्रकार्येण मे विनाशो न पुरुषदोषेण

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य राक्षस के मित्र मणिकार चन्दनदास से मिलना चाहता है। अतः अपने भत्य द्वारा उसे बुलवाता है। चन्दनदास के चाणक्य के समीप पहुंचने पर सामान्य अभिवादनादि के उपरान्त दोनों में परस्पर वार्तालाप होता है। चाणक्य चन्दनदास पर आरोप लगाता है कि तुमने अपने घर राक्षस परिवार को छिपा रखा है। अतः उस परिवार को हमें सौंप दो। चन्दनदास अत्यधिक दृढ़ता से कहता है कि पहले तो मेरे घर राक्षस परिवार है ही नहीं अतः सौंपने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता और यदि होता तो भो उसे मैं आपको नहीं सौंपता। चाणक्य पुनः चन्दनदास को चेतावनी देता हुआ कहता है हे श्रेष्ठिन चन्दनदास, राजा विरोधियों के प्रति अति कठोर है। अतः अब भो समय है, तुम राक्षस परिवार को सौंप दो तथा शेष जीवन आराम से व्यतीत करो। जब चन्दनदास किसी भो अवस्था में राक्षस परिवार को सौंपने को तैयार नहीं होता तो क्रोध में आकर चाणक्य अपने शिष्य से कहता है कि जाओ विजयपालक से कहो कि इसकी संपूर्ण समपत्ति जब्त करके परिवार सहित कारागार में डाल दें। मत्यु की सजा तो स्वयं महाराज चन्द्रगुप्त देंगे। चन्दनदास शिष्य के साथ कारागार की ओर जाते हुए मन में सोचता है कि ''सौभाग्य से मित्र के कार्य से मेरा विनाश हो रहा है पुरुष के दोष से नहीं।''– दिष्ट्या मित्रकार्येण मे विनाशो न पुरुषदोषेण।''

चन्दनदास ने सत्य ही कहा है क्योंकि कलियुग में मित्र भक्ति का अनूठी उदाहरण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

6. प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणाभ्तये। ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सुचापत्सु च।।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य स्वामिभक्त राक्षस की भक्ति से अत्यधिक प्रभावित होकर मन ही मन यह इच्छा करने लगा कि किस उपसा से इतना श्रेष्ठ व्यक्ति चन्द्रगुप्त का मन्त्री पद ग्रहण कर ले। ऐसा सोचते हुए चाणक्य कहता है कि यदि

किसी राजा का सेवक (मन्त्री) भक्ति से युक्त परन्तु विवेक से रहित एवं पराक्रमविहीन, भोरू प्रवृत्ति का हो तो उससे राजा को क्या लाभ मिल सकेगा। अर्थात् कुछ भो नहीं। यदि बुद्धि तथा पराक्रमयुक्त परन्तु भक्ति से रहित सेवक है तो भो राजा को किसी प्रकार का लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। अतः सत्य ही कहा गया है कि जिन सेवकों के पास उचित और अनुचित करने की बुद्धि होने के साथ–साथ पराक्रम एवं स्वामिभक्ति ये तीनों ही गुण विद्यमान होते हैं तो ऐसे सेवक राजा का हर दृष्टि से कल्याण ही करते हैं। इन गुणों (प्रज्ञादि) से विरहित सेवक ऐश्वर्य के समय और आपत्ति के समय में राजा के लिए स्त्री के समान कोमल एवं पोषण करने योग्य ही हुआ करते हैं:–

प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतयो
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सुचापत्सु च।।

भाव यह है कि प्रज्ञादि गुणों से रहित सेवक से राजा का किसी भो प्रकार का हित नहीं होता अपितु एक सुकोमल नारी का पोषण और रक्षण करने की भाँति उन सेवकों के पालन एवं पोषण का भार भो राजा के ऊपर ही आ जाता है।

7. न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य अपने पक्ष और राक्षस के पक्ष के व्यक्तियों का पता लगाने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करता है। गुप्तचर आकर सूचना देता है कि राक्षस के तीन परम मित्र हैं। प्रथम क्षपणक जीवसिद्धि, द्वितीय शकटदास तथा तृतीय मणिकार चन्दनदास। चाणक्य निश्चिन्त होकर कहता है कि क्षपणक को अपना ही व्यक्ति है तथा शकटदास तो लेखक (कायस्थ) है वह भो हमारा क्या बिगाड़ लेगा। ऐसा कहकर कुछ विचार करके पुनः चाणक्य कहता हे कि छुद्र शत्रु की भो उपेक्षा नहीं करनी चाहिए– ''न युक्तं प्राकृतमपि रिपुमवज्ञातुम्''

उपर्युक्त कथन सत्य ही जान पड़ता है क्योंकि कभो–कभो छोटे से छोटा शत्रु भो बड़े से बड़ा अहित कर सकता है। कहा भो गया है– ''अल्पीयसोऽप्यरेवृद्धिमहानर्थायरोवदिति।''

8. शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य चन्दनदास (राक्षस का मित्र एवं विश्वासपात्र) से मिलना चाहता है। अपने शिष्य से उसको बुलवाने का आदेश देता है। जब चन्दनदास चाणक्य के समीप आता है तथा स्वागत की सामान्य औपचारिकताओं के उपरान्त दोनों के मध्य परस्पर वार्तालाप होता है। चाणक्य चन्दनदास से कहता है कि तुम्हें राजा चन्द्रगुप्त से विरोध नहीं रखना चाहिए। चन्दनदास कहता है कि मैं राजा के साथ क्यों विरोध रखूंगा। इस पर चाणक्य ने कहा कि विरोध तो तुम कर ही रहे हो। इसी कारण तुमने राजा का अहित करने वाले अमात्य राक्षस का परिवार अपने घर लाकर रखा है। चन्दन दास प्रत्युत्तर देता है कि आर्य, किसी अनभिज्ञ न आपको मिथ्या सूचना दी है। पुनः चाणक्य कहता है तुम छल का आश्रय मत लो क्योंकि चन्द्रगुप्त के राज्य में छल का आश्रय अनुचित है। अतः तुम राक्षस परिवार को सौंप दो। वह कहता है कि मैं नहीं जानता कि इस समय वह परिवार कहाँ है। चाणक्य पुनः कहता है कि तुम्हारे सिर पर भय है फिर भो तुम उसको दूर नहीं करना चाहते हो। तुम्हारे भय का प्रतिकार अतिदूर है अतः सत्य बोलो अन्यथा व्यर्थ ही मेरे कोप का भाजन बन जाओगे। अतएव यह कथन सत्य ही प्रतीत होता है– ''शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः''

9. श्रोत्रियाक्षराणि प्रयत्नलिखितान्यपि नियतमस्फुटानि भवन्ति।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य स्वपक्ष के और विरोधियों के पक्ष के व्यक्तियों को पता लगाने के लिए तथा राक्षस के मित्रों की गुप्त गतिविधियों पर दृष्टि रखने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति करता है। चाणक्य का मित्र इन्दुशर्मा क्षपणक जीवसिद्धि के

रूप में राक्षस का परम विश्वस्त मित्र बन गया है। गुप्तचरों द्वारा चाणक्य को राक्षस के तीन विश्वासपात्र मित्रों का पता चलता है–

1. राक्षस की प्रेरणा से पर्वतक को मारने के लिए विषकन्या का प्रयोग करने वाला क्षपणक जीवसिद्धि।

2. राक्षस के परिवार को अपने घर में छिपाकर रखने वाला चन्दनदास।

3. राक्षस का परम विश्वासपात्र लेखाध्यक्ष।

गुप्तचर चाणक्य को चन्दनदास के घर से ही राक्षस के नाम की मुद्रा भो प्रदान करता है। चाणक्य ने एक कूट लेख लिखकर उसकी प्रतिलिपि शकटदास से करवाई क्योंकि वह तर्क देता है कि श्रोत्रिय (ब्राह्मण) के अक्षर प्रयत्नपूर्वक लिखे हुए होने पर भो निश्चित रूप से अपठनीय होते हैं।

17.3 द्वितीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येषयत्
   किं नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः।।
   किन्त्वंगीकृतमुत्सृजन् कृपणवच्छलाघ्यो जनोलज्ज्ते।
   निर्व्यूढं प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम्।।

2. प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्त चपला।

   पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।।

3. पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमेस्थितः

4. भव्यं रक्षति भवितव्यता

5. नन्वयुक्ततरः सुहृद्द्रोहः

6. सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तराभत्स्यति

17.3.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येषयत्
किं नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः।।
किन्त्वंगीकृतमुत्सृजन् कृपणवच्छलाघ्यो जनोलज्ज्ते।
निर्व्यूढं प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्रव्रतम्।।

जब राक्षस निरन्तर चन्द्रगुप्त मौर्य के विनाश हेतु उपाय करता है तथा वे सभो उपाय प्रायः असफल हो जाते हैं। इस घटना से राक्षस अत्यधिक निराश हो जाता है तब उसका विश्वासपात्र गुप्तचर विराधगुप्त उसे समझाते हुए कह रहा है कि प्रारम्भ किए हुए कार्य को उस समय तक नहीं छोड़ना चाहिए जब तक कि वह कार्य पूर्ण नहीं हो जाए क्योंकि शेषनाग के शरीर में क्या पृथ्वी के भार को वहन करने से पीड़ा उत्पन्न नहीं होती। परन्तु क्या वह पृथ्वी को फेंक देता है। अथवा निरन्तर चलायमान होने से क्या सूर्य गतिशून्य होकर बैठ जाता है अर्थात् नहीं। क्योंकि शेषनाग एवं सूर्य दोनों ही अपने–अपने कार्यों में समग्र रूप से संलग्न रहते हैं। थककर अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होते। ठीक इसी प्रकार प्रशंसनीय पुरुष भो स्वीकार किए हुए कार्य का कायर पुरुष की भाँति मध्य में नहीं छोडता अपितु उन कार्यों का पूर्णतः निर्वाह करता है। क्योंकि यह सज्जनों का धर्म है– ''सतामेतद्धिगोत्रव्रतम्''

2. प्रकृत्या वा काशप्रभवकुसुमप्रान्तचपला।
पुरन्ध्रीणां प्रज्ञा पुरुषगुणविज्ञानविमुखी।।

जब राक्षस अपने स्वामी नन्द के सपरिवार विनष्ट हो जाने पर अत्यधिक दुखी रहता है तब राजलक्ष्मी को उलाहना देता हुआ कहता है कि नन्द के समान गुणशाली पति को छोड़कर गुणों को न जानने वाले परपुरूष (चन्द्रगुप्त) का आश्रय लेना तुम्हारे लिए अनुचित है। क्योंकि असत्पुरुष के आश्रय लेने की अपेक्षा मर जाना श्रेष्ठ है। परन्तु हे पापशीले ! तूने तो कुलहीन मौर्य को पति के रूप में वरण किया है। अथवा यह सत्य ही कहा गया है कि– ''स्त्रियों की काश से उत्पन्न होने वाले पुष्प के अग्रभाग के समान चंचल बुद्धि स्वभाव के कारण पुरुषों के गुणों को पहचानने म विमुख होती है।''

भाव यह है कि स्त्रियाँ जिसका आश्रय लेती हैं या जिसको छोड़ देती है उन दोनों में से किसी के भो गुणों को नहीं जानती हैं। वे गुणशाली को तो छोड़ देती है तथा गुणहीन को स्वीकार कर लेती हैं।

3. पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमेस्थितः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब राक्षस विराधगुप्त से कुसुमपुर का वृतान्त सुन रहा है। विराधगुप्त बता रहा है कि शकटदास को फांसी की सजा सुनाई गई। ऐसा सुनकर राक्षस दुखी हो जाता है उसी समय उसका एक विश्वस्त व्यक्ति आकर सूचना देता है कि शकटदास सुरक्षित है। कुछ देर बाद सिद्धार्थक के साथ स्वयं शकटदास भो उपस्थित हो जाता है। शकटदास मन में सोचता है कि जो कुछ भो मैने देखा और सुना उसे देखकर मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ, उसका मूल कारण यह था कि मैंने इससे भो अधिक दुःखों को सहा है। अतः मेरा हृदय कठोर हो चुका है। यह सब सोचते हुए जब वह राक्षस के सम्मुख आता है तो उसे देखकर प्रसन्नता के साथ कहता है अपने स्वामी नन्द के मर जाने पर भो अक्षीण भक्ति वाला, स्वामी नन्द के कार्य को धारण करता हुआ पृथ्वी पर स्वामिभक्तों में अनुपम दृष्टान्त के रूप में अमात्य राक्षस स्थित है।

उपर्युक्त कथन सत्य ही है यदि स्वामिभक्तों की श्रेणी में गणना की जाए तो आज भो महाराज नन्द के प्रधानामात्य राक्षस की गणना प्रथम स्थान पर स्थित है अतः महाकवि विशाखादत्त का कथन पूर्णत उचित ही है– ''पृथिव्यां स्वामिभक्तानां प्रमाणे परमेस्थितः''

4. भव्यं रक्षति भवितव्यता

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब विराधगुप्त राक्षस को बता रहा है कि उसके (राक्षस के) मित्र शकटदास को सूली पर चढ़ाया जा रहा है तब राक्षस अत्यन्त दुखी होता है। इसके बाद वह अपने अन्य मित्र चन्दनदास का समाचार भो पछता है। शकटदास को शूली पर चढ़ाने के लिए पकड़े जाने के समाचार को सुनने के बाद चन्दनदास ने आपके परिवार को अन्यत्र भज दिया। इस प्रकार उसने स्वयं को मित्रद्रोह से बचा लिया। चाणक्य के बार–बार कहने पर भो जब उसने (चन्दनदास ने) आपके परिवार के विषय में कुछ नहीं बताया तब उसने (चाणक्य ने) चन्दनदास को पत्नी एवं पुत्र सहित कारागार में डाल दिया। यह सुनकर राक्षस और अधिक दुखी हो गया। ठीक उसी समय एक व्यक्ति आकर यह सूचना देता है कि शकटदास सुरक्षित है। यह सुनकर वह आश्चर्यचकित हो जाता है तथा पुनः पूछता है कि क्या यह सत्य है तब वह व्यक्ति राक्षस से कहता है कि क्या मैं आपसे असत्य निवेदन करूंगा। इस शुभ समाचार को सुनकर विराधगुप्त कहता है कि सौभाग्यशाली की भाग्य सदैव रक्षा करता है। अतः यह कथन पूर्णतः सत्य है कि– ''भव्यं रक्षति भवितव्यता''

5. नन्वयुक्ततरः सुहृद्द्रोहः

प्रस्तुत सूक्ति में उस घटना का वणन है जब विराधगुप्त राक्षस को कुसुमपुर के वृतान्त बताते हुए बताता है कि शकटदास को फांसी पर चढ़ाया जा रहा है। साथ ही वह राक्षस के अन्य मित्र चन्दनदास का भो समाचार बता रहा है कि जब चन्दनदास ने शकटदास की फांसी सम्बन्धी सजा का वृतान्त सुना तब उसने भो सुरक्षा की दृष्टि से आपको, परिवार को अपने घर से किसी सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया। चाणक्य द्वारा बार–बार पूछने पर भो

उसने आपके परिवार की जानकारी नहीं दी। चाणक्य का कोपभाजन होकर वह सजा भगतने को तैयार हो गया। परन्तु मित्रद्रोह नहीं किया। ऐसा सुनकर राक्षस अत्यन्त भावुक हो जाता है। धन्य है ऐसे मित्र अतः उपर्युक्त कथन सर्वथा उपर्युक्त प्रतीत होता है कि– ''नन्वयुक्ततरः सुहृद्द्रोहः'' अर्थात् मित्रद्रोह तो पूर्णतः अनुचित होता है।

6. सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तराभेत्स्यति।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राक्षस चन्द्रगुप्त को विफल करने के उपाय में असफल होता है तब वह कूटनीति का प्रयोग करना चाहता है। इसलिए वह चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त के मध्य मतभद उपस्थित करना चाहता है। इस हेतु वह करभक को कुसुमपुर भजना चाहता है। जिससे वह वहाँ के समस्त समाचार जानकर राक्षस को बता सके जिसके आधार पर उन दोनो मतभद कराया जा सके। अपनी योजना को सफल होता हुआ समझते हुए राक्षस कहता है कि– एक ओर तो चन्द्रगुप्त है जो अपने राज तेज के कारण समस्त राजाओं का अधिपति बन बैठा है दूसरी ओर चाणक्य है जो चन्द्रगुप्त को राजा बनाने के कारण गर्वीला हो गया है। राज्य प्राप्ति होने से चन्द्रगुप्त तो कृतार्थ हो रहा है तथा चाणक्य प्रतिज्ञा रूपी सागर (नन्दवंश का समूल विनाश रूपी प्रतिज्ञा) को पार करने से कृतकृत्य हो चुका है। अतः यही उचित अवसर है क्योंकि कृतकृत्यता स्वयं ही निश्चित रूप से उनके सुहृद भाव को पृथक् कर सकेगी अतः कवि से सत्य ही कहा है– ''सौहार्दात्कृतकृत्यतैव नियतं लब्धान्तराभत्स्यति।''

भाव यह है कि जब दोनों ही (चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त) अपना–अपना कार्य पूर्ण कर लेने के उपरान्त यह समझने लगेंगे कि हमें अभोष्ट की सिद्धि हो चुकी है। अतएव अब हमें एक दूसरे की क्या आवश्यकता है। उनके ऐसा समझते ही दोनों में स्वतः ही पार्थक्य हो जाएगा।

17.4 तृतीय अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. दैवम् अविद्वांसः प्रमाणयन्ति
2. दुराराध्या हि राजलक्ष्मीरात्मवद्‌भिरपि राजानिः
3. न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभभिराहूयन्ते।
4. निरीहाराणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः
5. परायतः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः
6. राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्
7. श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दुःखोपचर्याभशम्
8. सेवालाघवकारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिंविदुः

17.4.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. दैवम् अविद्वांसः प्रमाणयन्ति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चाणक्य सुनियोजित योजना के अनुरूप चन्द्रगुप्त से कृत्रिम कलह करता है। इसी मध्य चन्द्रगुप्त चाणक्य से कहता है कि आप मुझे प्रत्येक स्थान पर रोकते रहते हैं। इस पर चाणक्य ने कहा यदि तुम्हें प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं है तो अपना काम स्वयं करो। क्रोधावेश में चन्द्रगुप्त चाणक्य का त्यागपत्र भो स्वीकार कर लेता है। चन्द्रगुप्त पुनः पूछता है कि आपने कौमुदी महोत्सव पर क्यों रोक लगाई। साथ आपने मलयकेतु के भागने की क्यों उपक्षा की। आपने तो राक्षस को भो भागने का अवसर दे दिया। चन्द्रगुप्त तो राक्षस को ही बुद्धिमान, वीर व साहसी भो समझने लगता है। इस पर चाणक्य ने कहा कि नन्द वंश का विनाश मेरे ही कारण हुआ है। परन्तु चन्द्रगुप्त कहता हे कि यह कार्य तो दूसरे ने ही किया है चाणक्य पूछता है कौन तो वह उत्तर देता है

प्रतिकूल भाग्य। चाणक्य पुनः स्पष्ट करता है कि मूर्ख लोग ही भाग्य को प्रमाण मानते हैं– ''दैवम् अविद्वांसः प्रमाणयन्ति''

सत्य ही कहा गया है क्योंकि भाग्य पर आधीन रहकर व्यक्ति पुरूषार्थहीन हो जाता है। व्यक्ति को तो सदैव कम करना पड़ता है तभो वह विजयी हो जाता है अन्यथा वहीं कहा भो गया है– ''दैव दैव आलसी पुकारा।''

2. दुराराध्या हि राजलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चन्द्रगुप्त राजधर्म का पालन करने में आने वाली कठिनाई के बारे में मन में सोचता है कि राजधर्म का पालन अत्यधिक कठिन है। प्रजा का हित चिंतन ही उसका परम कतव्य है। इस लिए वह स्वयं को पराधीन मानने लगता है तथा कहता है कि– ''दुराराध्या हि राजलक्ष्मीरात्मवद्भिरपि'', अर्थात् समाहित चित्त वाले लोगों के लिए राज्यलक्ष्मी कठिनता से आराधना की जाने वाली है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रजापालन करते हुए राजा न तो अधिक कठोर हो सकता है और न ही मृदु। इन दोनों ही स्थितियों में उसके समीप लक्ष्मी स्थिर करने के प्रयास में राजा को सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

3. न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभुमिराहूयन्ते।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चन्द्रगुप्त और चाणक्य में कलह (कृत्रिम कलह) होता है। जिसके फलस्वरूप चन्द्रगुप्त चाणक्य को उसके मन्त्री पद से हटाकर स्वयं कार्यभार संभाल लेता है। चाणक्य जिस समय राजभवन में पहुंचता है, उस समय चन्द्रगुप्त अपने सिंहासन पर बैठा दिखाई पड़ता है। चाणक्य को देखकर वह उसे प्रणाम करता है तो चाणक्य उसको सार्वभोम सम्राट होने का आशीर्वाद देता है तथा पूछता है कि आपने हमें क्यों बुलाया है। इसका उत्तर देते हुए चन्द्रगुप्त कहता है कि आपके दर्शन से स्वयं को अनुगृहीत करने हेतु। ऐसा सुनकर चाणक्य ने कहा कि– ''न निष्प्रयोजनमधिकारवन्तः प्रभमिराहूयन्ते।'' अर्थात् राजाओं के द्वारा अधिकारीगण बिना प्रयोजन के नहीं बुलाए जाते हैं।

4. निरीहासणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब चन्द्रगुप्त कंचुकी को आदेश देता है कि आचार्य चाणक्य को बुलाओ। वह चाणक्य की कुटिया पर जाता है वहाँ की चाणक्य का सादगीपूर्ण जीवन देखकर वह कहता है कि– ''निरीहाराणामीशस्तृणमिव तिरस्कारविषयः'' अर्थात् निरभिलाष व्यक्तियों के लिए राजा भो तिनके समान तिरस्कार का विषय होता है।

सत्य ही कहा गया है क्योंकि सामान्य व्यक्ति तो तृष्णा के कारण सदैव राजा की स्तुति करते रहते हैं। परन्तु जितेन्द्रिय महात्माओं के लिए ये सब (राज्य, पद, इत्यादि) तृणवत् त्याज्य हैं। किसी ने कहा भो है– ''आशाया ये दासास्ते दासाः सर्वलोकस्य आशा येषां दासी तेषां दासायते लोकः।।''

5. परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राजा चन्द्रगुप्त राजधर्म की कठिनता का विचार करते हुए अपने मन में सोचता है कि दूसरों के प्रयोजन को सिद्ध करने में (प्रजा का निरन्तर पालन करने में) अपने स्वार्थ को छोड़ने के कारण निश्चित रूप से राजा के लिए स्वसुख की अपेक्षा परकार्य (प्रजा का सुख) ही अपेक्षित है। अतः राजा को पराधीन हैं। इसीलिए सत्य ही है कि ''परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्ति पुरुषः'' अर्थात् पराधीन मनुष्य सुख के आनन्द को किस प्रकार से जान सकता है।

कहने का भाव यह है कि राजा स्वविषयोपभोग के लिए स्वतन्त्र नहीं है, उसका प्रमुख कतव्य तो प्रजापालन करना है। अतः वह स्वयं तो पराधीन सा अनुभव करने लगता है।

6. राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राजा चन्द्रगुप्त राज्य के विषय में विचार करता हुआ राजधर्म की कठिनता के विषय में कहता है कि– ''राज्यं हि नाम राजधर्मानुवृत्तिपरस्य नृपतेर्महदप्रीतिस्थानम्'' अर्थात् राज्य राजा के कतव्यों के पालन करने में तत्पर राजा के लिए महान द:ख का स्थान है।

उपर्युक्त कथन सत्य ही प्रतीत होता है कि क्योंकि राजधर्म का पालन अत्यधिक कठिन है। प्रजा का हित चिंतन ही उसका परम कतव्य है। प्रजापालन करते हुए राजा अपने विषयोपभाग के लिए स्वतन्त्र नहीं है।

7. श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दु:खोपचर्याभृशम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है कि जब राजा चन्द्रगुप्त राजा के कतव्यों को सोचता हुआ अपने मन में विचार करता है कि राजधर्म का पालन अति कठिन है। इसी कारण राज्यलक्ष्मी को स्थिर करने के नाना उपाय भो करने पड़ते हैं। राजा न तो अधिक दण्ड दे सकता है क्योंकि ऐसा करने से प्रजा में विद्रोह हो सकता है। इसी प्रकार अधिक कोमल स्वभाव वाला भो नहीं हो सकता क्योंकि ऐसा करने से प्रजा तिरस्कार भो कर सकती है इसी कारण कवि विशाखदत्त का कथन पूर्णतः सतय प्रतीत होता है कि– ''श्रीर्लब्धप्रसरेव वेशवनिता दु:खोपचर्याभशम्'' अर्थात् प्रगल्भता को प्राप्त वेश्या के समान राज्य लक्ष्मी भो दु:ख से सेवा के योग्य है।

कहने का भाव यह है कि राज्यलक्ष्मी भो चतुर वेश्या के समान मूर्ख से द्वेष करती है, अत्यन्त विद्वान् राजाओं से भो प्रीति नहीं करती, शूरवीरों से डरती है तथा कायरों का उपहास करती है। इसीलिए राज्यलक्ष्मी को स्थिर करने हेतु राजा को सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए।

8. सेवालाघवकारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिंविदु:

प्रस्तुत सूक्ति में उस घटना का वर्णन है जब चाणक्य एवं चन्द्रगुप्त की मिथ्या लड़ाई को कंचुकी सत्य मानकर सेवा धर्म के विषय में अपना निर्वेद प्रकट करता है। वह कहता है कि '' सेवालाघवकारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृत्तिंविदु:'' अर्थात् सेवा को विद्वान् उचित ही श्ववृत्ति कहते हैं।

भाव यह है कि सेवा बडी कष्टकारक है क्योंकि सेवक को तो राजा और मन्त्री इन दोनों को ही प्रसन्न करना पड़ता है। स्थिति यह है दोनों (चन्द्रगुप्त और चाणक्य) विरोधी उद्देश्य लेकर काम कर रहे हैं। यदि इनम एक को प्रसन्न किया जाता है तो दूसरा नाराज हो जाता है। इसीलिए कवि ने सेवा और कुक्कुरवृत्ति को समान बताया है क्योंकि दोनों ही अपने स्वामी के प्रति समान आचरण करते हैं। किसी भो स्थिति में स्वामी को नाराज नहीं करते हैं।

17.5 चतुर्थ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. येनात्मनः पक्षमुझित्वा परपक्षः प्रमाणीक्रियते
2. प्रायो भत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः

17.5.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. येनात्मनः पक्षमुझित्वा परपक्षः प्रमाणीक्रियते

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राक्षस बौद्ध संन्यासी (भदन्त) क्षपणक से चन्द्रगुप्त के विरूद्ध विजययात्रा हेतु शुभ मुहूर्त के विषय में पूछता है, तब क्षपणक उसे पूर्णिमा का दिन शुभ बताता है। इस बात पर राक्षस कहता है कि पूर्णिमा का दिन तो अपने आप में ही ठीक नहीं है तो फिर नक्षत्र और लग्न के विषय में विचार करने से क्य लाभ?

इस अवस्था में अभियान कैसे हो सकता है। इस शंका का निवारण करते हुए जीवसिद्धि कहता है कि यद्यपि लग्न अशुभ है तथापि बुध से अधिष्ठित होने से शुभ हो जाती है और चन्द्रमा की शक्ति से जाते हुए तुम पूर्ण सफलता को प्राप्त करोगे। ऐसा कहने पर राक्षस कहता है कि आप अन्य ज्योतिषियों के साथ विचार कर लीजिए। ऐसा कहने पर राक्षस कहता है कि आप क्रोधित तो नहीं हुए। क्षपणक उत्तर देता है मैं क्रोधित नहीं हूँ। क्रोधित तो भगवान ज्योतिष या काल ही होगा क्योंकि तुम मुझे छोड़कर दूसरे व्यक्ति पर विश्वास करने जा रहे हो वे तो तुमको मिथ्या मार्ग ही बताएंगे जिसके कारण तुम्हारा विनाश हो जाएगा। अतः यह कथन सत्य ही है– ''येनात्मनः पक्षमुझित्वा परपक्षः प्रमाणीक्रियते।''

2. प्रायो भृत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गय है जब क्षपणक से चन्द्रगुप्त के विरूद्ध विजय यात्रा हेतु शुभ मुहूर्त पूछकर राक्षस प्रियंवदक स पूछता है कि पता करो कि क्या समय है, प्रियंवदक कहता है कि सूर्यास्त होने वाला है। राक्षस स्वयं उठकर सूर्यास्त के समय को देखकर कहता है कि–

उदय होते और अस्त होते हुए सूर्य उस अधिकारी की भाँति प्रतीत होता है जिसके आने पर तो समस्त अनुचर वर्ग स्वागत करता है तथा जाने पर विदाई देता है। जब वह अधिकारी आता है सभो अनुचर उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए आगे रहते हैं परन्तु जाने पर पीछे रहते हैं। यहाँ यह कल्पना की गई है कि उद्यान के वृक्षों की छाया प्रातःकाल पश्चिम की ओर पड़ती है जहाँ सूर्य जाता है। अतः यह कल्पना की गई ह कि वे स्वामिभक्त अनुचर हैं। सायंकाल सूर्य पश्चिम की ओर जा रहा होता है तब वृक्षों की छाया पूर्व की ओर पड़ती है अतः यह कल्पना की गई वे वृक्ष सूर्य को विपत्ति में छोड़कर अलग हो रहे हैं अतः यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि ''प्रायो भत्यास्त्यजन्ति प्रचलितविभवं स्वामिनं सेवमानाः'' अर्थात् प्रायः सेवा करते हुए भत्य क्षीण ऐश्वर्य वाले स्वामी को छोड़ देते हैं।

17.6 पंचम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापि पुरुषस्य महदाशंकास्थानम्
2. अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः
3. गतिः सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं कलयति।
4. तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना
   विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति।
5. मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि।
6. स्वार्थे कस्मिन्समीहापुनरधिकतरे त्वामनार्यं करोति।

17.6.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापि पुरुषस्य महदाशंकास्थानम्

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब मलयकेतु राक्षस से मिलना चाहता है। राक्षस सेवक से कहता है कि बिना अलंकारों (आभ्षणों) के कुमार से मिलना उचित नहीं अतः मुझे आभ्षण लाकर दो। आभ्षण पहनकर जब राक्षस चलने लगता है तो मन में कहता है कि– ''अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापिपुरुषस्य महदाशंकास्थानम्'' अर्थात् अधिकार इस नाम से कहा जाने वाला पद निर्दोष व्यक्ति के लिए भो अधिक भय का स्थान होता है।

उपर्युक्त विचार सत्य ही ज्ञात होता है क्योंकि यदि किसी को उच्च पद पर आसीन कर दिया जाए तो प्रजावर्ग (सामान्य जनता) को द्वेष होने लगता है, राजा से वह अधिकारी भो डरता है। अतः अधिकार भो निर्दोष व्यक्ति को डरा देता है।

2. अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गय है जब मलयकेतु राक्षस को विश्वासघाती समझने लगता है तथा उस पर कई आरोप लगाता है तथा कहता है तुम नाम्ना ही राक्षस नहीं हो अपितु कमणा भो राक्षस हो। तुमने ही पिता द्वारा धारण किए गए आभ्षणों को धूर्तता से निकलवाकर चन्द्रगुप्त के साथ सन्धिकर के मेरे विरूद्ध षडयन्त्र किया है। साथ ही तुमने मेरे पिता पर्वतश्वर को विषकन्या द्वारा मरवाया। इतना सब कुछ सुनकर राक्षस अत्यधिक दुखी होकर अपने मन में सोचता है– ''अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः'' अर्थात् यह तो मर्म स्थान के व्रण के ऊपर दूसरा व्रण है।

कहने का तात्पर्य यह है पहले से ही राक्षस मलयकेतु के अभियोग लगाने से अत्यधिक दुखी था पर्वतेश्वर की हत्या के आरोप ने तो उसे और अधिक आहत कर दिया।

3. गतिः सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं कलयति

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन किया गया है जब मलयकेतु राक्षस से मिलना चाहता है तब राक्षस आभ्षणादि पहन कर उसके समीप जाते हुए अपने मन में विचार करते हुए कहता है कि अधिकार, पद, निर्दोष व्यक्ति के हृदय में भो भय उत्पन्न करता है क्योंकि सर्वप्रथम भय तो सेवनीय (राजा) से सेवक को चारों ओर से प्राप्त होता है, उसके बाद राजा के समीप रहने के कारण उस व्यक्ति (अधिकारी) के हृदय में रहता है, इसी कारण उच्चपद प्राणिमात्र में द्वेष उत्पन्न करने वाला होता है। अतः यह सत्य ही है कि ''गति सोच्छ्रायाणां पतनमनुकूलं कलयति''।

अर्थात् उन्नत व्यक्तियों की अवस्था भो उचित पतन को करती है। भाव यह है कि बुद्धिमान व्यक्ति को सदैव अपनी उन्नति से डरते हुए संभावित पतन को भो सोचना चाहिए।

4. तदाज्ञां कुर्वाणो हितमहितमित्येतदधुना विचारातिक्रान्तः किमिति परतन्त्रो विमृशति।

जब चाणक्य की योजनानुसार भागुरायण कुसुमपुर से बाहर आते हैं तथा मलयकेतु की सेवा में उनको भज दिया जाता है। मलयकेतु भागुरायण को अपना मन्त्री बना देता है। भागुरायण को मन ही मन में बुरा लगता है कि किसो का विश्वस्त बनकर उसे धोखा दिया जाए। परन्तु अब तो सोचने का समय समाप्त हो गया है क्योंकि वह तो स्वयं पराधीन है। अतः अब कर्तव्य और अकर्तव्य, हानि और लाभ के विषय में सोचना ही व्यर्थ है। अतः इस समय तो मुझे चन्द्रगुप्त की आज्ञा का पालन करते हुए विचारों को त्याग ही देना चाहिए। क्योंकि मुझे जैसे पराधीन व्यक्ति के लिए यह अनुचित है कि वह यह हितकारी है या अहितकारी ऐसा सोचे।

5. मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि।

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब सिद्धार्थक चाणक्य द्वारा छलपूर्वक शकटदास से लिखवाया हुआ व राक्षस की मुद्रा से मुद्रित लख व राक्षस की मुद्रिका से मुद्रित आभ्षणों की पेटिका लेकर मिथ्या रूप में पाटलिपुत्र जाता है। उसी समय उसे क्षपणक दिखाई पड़ता जाता है। क्षपणक का दर्शन अशुभ माना गया है। सिद्धार्थक को क्षपणक प्रणाम करता है तथा पूछता है कि कहीं जाने की तैयारी है। वह कहता है हा मैं विदेश जा रहा हूँ। आप बताइए कि आज का दिन कैसा है। इस बात पर क्षपणक हंसकर कहता है कि ''मुण्डित सिर वाले तुम नक्षत्रों को पूछते हो''– ''मुण्डितमुण्डो नक्षत्राणि पृच्छसि''।

कहने का भाव यह है कि शुभमुहूर्त, नक्षत्रादि के विषय में तो तुम को यात्रा करने के पूर्व ही पूछना चाहिए था अब पूछने से क्या लाभ ?

6. स्वार्थे कस्मिन्समीहापुनरधिकतरे त्वामनार्यं करोति।

चाणक्य की सुनियोजित योजनानुसार मलयकेतु राक्षस को अपना विश्वासघाती समझने लगता है तथा पूछता है कि– स्वार्थे कस्मिन्समीहापुनरधिकतरे त्वामनार्यं करोति। अर्थात् ऐसा कौन सा स्वार्थ है जिसकी इच्छा ने तुमको अनार्य बना दिया है।

भाव यह है कि यदि तुम चन्द्रगुप्त की दासता स्वीकारते हो तो वह तुम्हें धन देगा, मन्त्री पद भो देगा। यदि मेरे समीप रहते हो तो तुम इच्छा से धन देते हो अर्थात् चन्द्रगुप्त के पास मन्त्रीपद दासता है तथा मेरे पास तुम स्वामी हो। इस प्रकार मौर्य की सेवा से भो बढ़कर मेरे पास रहने पर तुम्हारी स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहती है। फिर किस स्वार्थ के कारण तुम अनार्य हो रहे हो ?

17.7 षष्ठ अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति।
2. अभ्मिः खल्वेषोऽविनयस्य
3. कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तव सति वणिक्त्वेऽपि वणिजः
4. दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।

17.7.1 सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति।

जब राक्षस अपनी योजना में पूर्णतः विफल हो जाता है तथा चाणक्य की कूटनीति सफल होती है तब वह जीर्ण उपवन में प्रविष्ट होकर चन्दनदास के समाचार को जानने का प्रयास करता है उस समय वह सोचता है कि मनुष्यों के अनुकूल और प्रतिकूल अवस्थाओं के परिणाम बिना किसी कल्पना के ही आने वाले होते हैं। क्योंकि जो (नन्द के जीवित रहने पर) सैकड़ों राजाओं से घिरा हुआ राजा के ही समान नागरिकों द्वारा अंगुलियों के द्वारा चन्द्रमा के समान निर्दिष्ट किया जाता हुआ शनैः शनैः नगर से निकला करता था वही मैं आज असफल होता हुआ पुनः उसी नगर में चोर की भाँति शीघ्रता से प्रवेश करता हूँ।

अतएव उपर्युक्त कथन पूर्णतः सत्य है– 'अलक्षितनिपाताः पुरुषाणां समविषमदशापरिणतयो भवन्ति।''

2. अभूमिः खल्वेषोऽविनयस्य

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राक्षस चन्दनदास का पता लगाने के लिए पाटलिपुत्र के जीर्णोद्यान में आता है। वहाँ पर वह देखता है कि एक पुरुष आत्महत्या करने का प्रयास कर रहा है। राक्षस उसे रोकते हुए उसके पूछता है कि तुम ऐसा क्यों कर रहे हो। ऐसा पूछने पर वह बताता है कि मेरा मित्र विष्णुदास अग्नि में प्रवेश करने जा रहा है, मैं उसका वियोग नहीं सह सकता अतः स्वयं को नष्ट करने जा रहा हूँ। राक्षस पूछता है कि विष्णुदास क्यों जलकर मरना चाहता है क्या उसे कोई असाध्य रोग है, अथवा राजकोप, वह पुरुष कहता है कि चन्द्रगुप्त के राज्य में निर्दय प्रवृत्ति नहीं है। राक्षस पुनः पूछता है कि क्या दुष्प्राप्य स्त्री में अनुरक्त हो गया है। वह पुरुष कहता है कि इस भ्मि पर अविनय का कोई स्थान नहीं है– ''अभ्मिः खल्वेषोऽविनयस्य''

3. कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तवसति वणिक्त्वेऽपि वणिजः

प्रस्तुत सूक्ति में उस समय का वर्णन है जब राक्षस चन्दनदास का पता लगाने के लिए पाटलिपुत्र के जीर्णोद्यान में आता है। वहाँ पर उसे एक पुरुष दिखाई देता है जो आत्महत्या करने का प्रयास कर रहा है। जब राक्षस उससे पूछता है कि ऐसा क्यों कर रहे हो तब वह पुरुष बताता है कि पाटलिपुत्र में विष्णुदास नामक मणिकार श्रेष्ठी है जो मेरा मित्र है वह अपनी संपूर्ण संपति का दान करके अग्नि में जलकर मरने हेतु नगर से बाहर चला गया है। राक्षस पूछता है कि वह (विष्णुदास) ऐसा क्यों कर रहा है। वह अपने मित्र चन्दनदास के

वियोग में स्वयं को समाप्त करना चाहता है। उसने आज चन्द्रगुप्त के पास जाकर कहा भो था कि आप मेरी सम्पूर्ण धन सम्पत्ति ले लीजिए तथा इसके बदले में मेरे मित्र चन्दनदास को मुक्त कर दीजिए। ऐसा सुनते ही राक्षस भावुक होकर कहता है कि जिस धन के लोभ से पिता और पुत्र में विरोध उत्पन्न हो जाता है, जिस धन के लिए मित्र भो मित्रता छोड़ देते हैं। उस धन को तुम अपने मित्र की रक्षार्थ छोड़ रहे हो इसलिए तुम धन्य हो क्योंकि तुम्हारा धन तुम्हारे वणिक् होने पर भो सफल हो गया। अतः सत्य ही कहा गया है कि– कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तवसपि वणिक्त्वेऽवि वणिजः।''

4. दैवेनोपहतस्य ब्द्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति

राक्षस अपने मित्र चन्दनदास का पता लगाने के लिए जब जीर्णोधान में आता है तब वह अत्यधिक भावुक होकर सोचता है कि मैं निश्चित रूप से नन्द वंश का शत्रु है क्योंकि नन्द के स्वर्गलोक चले जाने पर मैंने पर्वतक का आश्रय लिया, पर्वतक के भो मर जाने पर उनके पुत्र मलयकेतु का आश्रयमानकर नन्द के शत्रु के बदला लेने का प्रयास किया परन्तु असफल रहा। ऐसा विलाप करते हुए वह पुनः कहता है कि इस समय भो जो राक्षस अपने स्वामियों की सेवा कर रहा है वह स्वामियों के शत्रु से सन्धि किस प्रकार कर सकता है। मलय केतु ने ऐसा विचार कैसे कर लिया। अथवा सत्य ही है कि भाग्य से मारे हुए व्यक्ति की सम्पूर्ण बुद्धि विपरीत हो जाती है।

17.8 सप्तम अंक की प्रमुख सूक्तियाँ

1. कार्याणां गतयोविधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वं चिरात्
2. स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्य जागरूकाः।

17.8.1. सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या

1. ''कार्याणां गतयो विधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वंचिरात्''

अपनी कूटनीति का सफल प्रयोग करते हुए अपनी कूटनीति का सफल प्रयोग करते हुए जब चाणक्य राक्षस से पूछता है कि क्या तु अपने मित्र चन्दनदास का जीवन चाहते हो। इस बात के उत्तर में राक्षस ने कहा कि निस्सन्देह मैं यही चाहता हूँ। तब चाणक्य ने कहा फिर आप चन्द्रगुप्त के अमात्य होने को स्वीकार कीजिए। जब तक आप ऐसा नहीं करते तब तक आपका अनुग्रह निराधार है। ऐसा सुनकर राक्षस मन में सोचता है कि– ''कार्याणा गतयो विधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वंचिरात्'' अर्थात् पूर्व जन्म के कर्मों की गतियाँ चिरकाल से ब्रह्मा की भो आज्ञाकारिता को प्राप्त नहीं होती है।

भाव यह है कि सर्वात्मना समर्थ होता हुआ भो ब्रह्म कम की विचित्र गति के कारण उन गतियों का अनुचर हो जाता है। अतः मैं भो कम की गति के कारण विवश हूँ। मित्र के प्राणों की रक्षा हेतु मुझ नन्द के शत्रु चन्द्रगुप्त की रक्षा हेतु नन्द के शत्रु चन्द्रगुप्त का भत्य बनना पड़ रहा है।

2. स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्य जागरूकाः

जब चाणक्य द्वारा चन्द्रगुप्त के समस्त शत्रु बिना युद्ध के ही विनट हो जाते हैं तब चन्द्रगुप्त मन ही लज्जा की अनुभ्ति करता है। क्योंकि शत्रुओं को परास्त करने के लिए उसे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर ही नहीं मिला अथवा यह कहा जा सकता है कि राज्य चिन्ता से विमुख मेरे समान जिस राजा के राज्य में सतत सावधान आचार्य चाणक्य के सदृश मन्त्री जागरूक रहा करते हैं वह राजा प्रत्यंचा रहित धनुष वाला होता हुआ भो पथ्वी को जीतने के योग्य शत्रु को जीतने में समर्थ है। अतः यह कथन पूर्णतः सत्य प्रतीत होता है कि– स्वपतोऽपि ममेव यस्य तन्त्रे गुरवो जाग्रति कार्य जागरूकाः। अर्थात् मैं तो सोता हूँ (निश्चिन्त रहता हूँ) तथा मेरे गुरू मेरे कार्यों को देखते हुए निरंतर जागरूक रहते हैं।

17.9 पारिभाषिक शब्दावली

उपचारः	सम्मान / शिष्टाचार
दिष्ट्या	सौभाग्य से
प्राकृत	सामान्य
श्रोत्रिय	वैदिक ब्राह्मण
परिभव	अपमान
निर्व्यूढ	निर्वाह किया हुआ
दुराध्या	कठिनता से आराध्य
लाघवकारिणी	तुच्छ करने वाली
निरीह	निरभिलाष
कलयति	करती है (घटाती है)
समीहा	इच्छा
स्वपतः	सोते हुए
विगुणीकृत	प्रत्यंचा रहित
कार्मुकः	धनुष

17.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

निम्नलिखित सूक्तियों की हिन्दी भाषा में व्याख्या कीजिए–

1. अत्यादरो शंकनीयः ।
2. शिरसि भयमतिदूरे तत्प्रतीकारः।
3. भव्यं रक्षति भवितव्यता।
4. परायत्तः प्रीते कथमिव रसंवेत्तिं पुरुषः।
5. सेवालाघव कारिणी कृतधियः स्थाने श्ववृलिविदुः
6. अधिकारपदं नाम निर्दोषस्यापि पुरुषस्य महदाशंकास्थानम्
7. अयमपरो गण्डस्योपरि स्फोटः
8. दैवेनोपहतस्य बुद्धिरथवा सर्वा विपर्यस्यति।
9. कृतार्थोऽयं सोऽर्थस्तव वणिक्त्वेऽपि वणिजः।
10. कार्याणां गतयोविधेरपि न यान्त्याज्ञाकरत्वंचिरात्।

बोध प्रश्नोत्तर

1. इकाई 17.2.2 में देखिए
2. इकाई 17.2.2 में देखिए
3. इकाई 17.3.2 में देखिए
4. इकाई 17.4.2 में देखिए
5. इकाई 17.4.2 में देखिए
6. इकाई 17.6.2 में देखिए
7. इकाई 17.6.2 में देखिए
8. इकाई 17.7.2 में देखिए
9. इकाई 17.7.2 में देखिए
10. इकाई 17.8.2 में देखिए

17.11 सारांश

इस इकाई में हमने विशाखादत्त प्रणीत "मुंडराक्षसम नाटक" जनकल्याणर्थ सूक्तियों का ज्ञान प्राप्त किया । ये सूक्तियाँ सामाजिक, आर्थिक – राजनैतिक – सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से लाभकारी है । ये सूक्तियां संखा व्यक्ति का मार्गदर्शन करती रहेगी ।

17.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुद्राराक्षसम्– डॉ0 निरूपण विद्यालंकार (व्याख्याकार), साहित्य भंडार, सुभाष बाजार, मेरठ, 2000.।
2. मुद्राराक्षस नाटकम्– डॉ0 सत्यव्रत सिंह (व्याख्याकार) कृष्णदास अकादमी वाराणसी, 1968.।